अन्तस्तल।

(गद्य-काव्य)



लेखक—

आचार्य चतुरसेन शास्त्री।



प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक कार्यालय,

कूचा पातीराम,

देहली।





१९३५ ई०

दूसरी बार]

[डेढ़ रुपया

प्रकाशक—
हिन्दी पुस्तक कार्यालय,
कूचा पातीराम,
दिल्ली।



मुद्रक—
पं० रामचन्द्र शर्मा
महारथी प्रेस,
दिल्ली।

समर्पण ।

जिसे अन्त तक छिपाया और जो अन्त में स्वयं छिप गया, किन्तु जिसकी वास अन्तस्तल में सदा को बस गई है, उसी अन्तस्तल के अमर राजा की दिव्य आत्मा की स्मृति में यह अभागिनी रचना समर्पित है ।

उसीका—

चतुर ।

भूमिका



मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं 'अन्तस्तल' पर भूमिका लिखूं, पर अन्तस्तल पर 'भूमिका' उठाना—हवा में किले बनाना—आकाश में अट्टालिका उठाना है। इसके लिये गन्धर्व नगर-निर्माता अलौकिक 'इन्जीनियर' दरकार है! 'अन्तस्तल' एक सच्चे जादू की पिटारी है, मानस-भावों के चित्रों का विचित्र एलबम है, अन्दरूनी बायस्कोपकी चलती फिरती—जीती जागती—तसवीरें हैं, जिनके दृश्य दिल की आंखों ही से देखे जा सकते हैं। चर्म चक्षुओं का यह विषय नहीं है। हृदय की बातें हृदय ही से जानी जा सकती हैं, जड़ लेखनी का यह काम नहीं है। फिर भी हम अन्तस्तल के विषय में संक्षेप मे कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि—

"कागज पै रख दिया है कलेजा निकाल के"।

अन्तःकरण के भावों का सूक्ष्म विश्लेषण मनोविज्ञान-शास्त्री का काम है। आजकल 'मनोविज्ञान' शास्त्र एक बड़े महत्व का विषय होगया है। मनोविज्ञान के आचार्यों ने अपनी गूढ़ गवेषणाओं से—बहुत-बारीक छानबीन से—इसे अत्यन्त समुन्नत दशा में पहुंचा दिया है।

मनोविज्ञानीका का काम, कार्यकारण भाव का निरूपण करना है। क्रोध के आवेश में मनुष्य के मन की क्या दशा होती है, उस समय उस में किन किन भावों का उदय होता है, क्यों होता है, उनका प्रभाव क्रोधाविष्ट व्यक्ति की बाह्य आकृति पर क्या पड़ता है, इत्यादि बातों की वैज्ञानिक खोज करना मनोविज्ञान के प्रवीण पारखी का काम है। मनोविज्ञान-प्रदर्शन का यह प्रकार जितना महत्व पूर्ण है उतना ही गम्भीर भी है—सुगम नहीं है, रोचक भी नहीं है—ऐसा होना स्वाभाविक भी है। कृषिशास्त्र का आचार्य या वनस्पति विज्ञान का विद्वान् ईख के क्रम विकास का इतिहास वैज्ञानिक ढङ्ग से सुनाकर—ईख के पौदे की वृद्धि का विधान और उसमें रससंचारका प्रकार समझकर— ... विषय में इतनी सरसता या मधुरता नहीं ला सकता जितनी ... खिलाकर या हलवाई मिठाइयाँ बनाकर। रसभाजी या

हलवाई गन्ने की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं करते। यह उनका काम नहीं। वह यह जानते भी नहीं कि मिठाई में यह मिठास कैसे और क्यों कर उत्पन्न हो जाती है, फिर भी उनका व्यापार—काम—है बहुत मधुर, इसका साक्षी हर कोई है। यह सार्वजनिक अनुभव है।

कवि या सहृदय लेखक का काम भी कुछ ऐसा ही है। वह मानसिक भावों की वैज्ञानिक व्याख्या करने नहीं बैठता, सिर्फ मनोहर चित्र खींचता है, जिन्हें देखकर सहृदय—'तमाशा'—दर्शक फड़क जाता है। कभी उसके मुख से आह निकलती है कभी वाह, कभी आँखों में आँसू आते हैं, कभी होठों पर मुस्कराहट। अन्तस्तल में कभी कभी के प्रसुप्त भाव सहसा जागृत हो उठते हैं छिपे हुए दिली जजबात आँखों के सामने आकर नाचने लगते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'अन्तस्तल' इसका एक उत्तम उदाहरण है।

इसमें अन्तस्तल के चतुर चितेरेने बड़े कौशल से—बड़ी सफाई से मानसिक भावों के विविध रूप-रङ्ग के विचित्र चित्र खींचकर कमाल का काम किया है। मैं उन्हें इस सफलता पर बधाई देता हूँ। 'अन्तस्तल' हिन्दी में निःसन्देह अपने ढंग की एक नई रचना है। यह पाठक और लेखक दोनों के काम की चीज है। समझदार पाठकों के लिये यह शिक्षाप्रद मनोविनोदकी सामग्री है और लेखकों के लिये भाव चित्रण के दिग्दर्शन का बढ़िया साधन। इसकी वर्णनशैली में और भाषा में स्वाभाविकता है, इस कारण कहीं कहीं प्रान्तीयता की झलक है, पर भाव पूर्ण चित्रों की मनोहरता में वह खटकती नहीं, उसे गुल्लालाका दाग, चाँद का धब्बा या कमलपुष्प पर पड़ी हुई शैवाल की पत्ती समझ सकते हैं।

मैं आशा करता हूँ हिन्दी साहित्य में यह पुस्तक वह आदर और प्रचार पायगी जिसके यह योग्य है।

महा विद्यालय, ज्वालापुर
श्रावण कृष्ण ३ शुक्रवार
संवत् १९७८ वि०।

पद्मसिंह शर्मा।

दुःखभरी दो बातें !

मेरी यह रचना विधवा है। हाजी मुहम्मद के साथ एक तोर से मैंने इसका ब्याह कर दिया था। यह आदमी गुजराती साहित्य-मन्दिर का मस्ताना पुजारी था—और 'वीसमी सदी' नामक प्रख्यात पत्रिका का सम्पादक था। सबसे प्रथम उसी की दृष्टि में यह रचना चढ़ी। उसने पागल की तरह इसे लाड़ किया—मैंने भी अपने पराये की परवा न कर उसी से इसका ब्याह कर दिया। ब्याह होते होते ही तो वह मर गया !!!

कितनी हौंस से उसने इसे चाहा था ! 'रूप' को सुनकर उसकी आंखें झूमने लगी थीं, 'दुःख' को सुनकर वह रोया था और अनुताप को सुनकर वह उद्वेग के मारे खड़ा होगया था। वह अच्छी तरह हिन्दी नहीं पढ़ सकता था, सुनता था। कितनी बार उसने इसका गुजराती अनुवाद करने को कलम हाथ में ली-पर रख दी। उसने कहा—"दिल की उमग कुछ कम होजाय—मजा जरा ठण्डा पड़ जाय—तब लिखूंगा।"

एक एक पंक्ति पर चित्र बनाने की उसने तैयारियां की थीं। एक चित्रकार 'रूप' पर कुछ चित्र बना कर लाया भी था—पर वे उसे पसन्द न आये। उसने कहा—"लेखक जो कुछ कह नहीं सकता है—चित्रकार उसी कमी को पूरी करता है। उत्तम चित्रकार नहीं है। इन चित्रों ने तो इस अवगुण्ठनवती रचना-सुन्दरी को पशु की तरह नंगी कर दिया है।" उसने वे चित्र खुदी की टोकरी में डाल दिये थे।

वह एकाएक मर गया। साहित्य के भाग्य फूट गये। अब इस रचना को क्या अएकार मयस्सर होगा ? हिन्दी के प्रकाशकों की दृष्टि निराली है—बहुत कम उनमें साहित्य के सौन्दर्य को परख सकते हैं। जो कुछ परख सकते हैं—उनकी दृष्टि बुर्दा-फरोशों की सी है। गुलामी के जमाने में जब कोई खूबसूरत जवान लड़की बाजार में बिकने आती थी तो बुर्दा-फरोश (मनुष्यों का व्यापारी) उसके सौन्दर्य को इस दृष्टि से निरखता था कि बाजार में इसके कितने दाम उठेंगे ! हिन्दी के प्रकाशकों की यही दृष्टि है। लेखक अभागे इतने पतित और आत्माभिमान शून्य होगये हैं कि अपनी अपनी रचना-सुन्दरियों का हाथ थामे इन्हीं बुर्दा-फरोशों के द्वार पर झख मारते फिरते हैं, और कहते ग्लानि होती है—उसके एक २ सौन्दर्य-स्थल को उघाड़ उघाड़ कर दिखाते हैं। यह मोल भाव का महत्व है ! यह कमीने पैसे की अमलदारी है ! मैं भी ऐसा ही अभागा लेखक हूँ। अतएव मुझे यह आशा करने की इच्छा नहीं है कि मेरी यह रचना—जिसमें ... हृदय का समस्त रस (जैसा भी कुछ हो) भरा

घर में कुलवधू का आदर और अलङ्कार पावेगी। फिर भी मुझे इतना सन्तोष है कि मैं इसे अच्छे से अच्छे प्रकाशक के हाथ में सौंप सका हूँ।

मैं समझता हूँ कि हिन्दी में यह अपने ढंग की निराली शैली की रचना है। जब मैंने इसे लिखना शुरू किया था—तो मैंने इसे 'बावले की बड़' समझा था। सबसे प्रथम मैंने 'अनुताप' लिखा था। पर किसी को दिखाया नहीं, देर तक यह छिपा रक्खा रहा। एकाएक वह कागज मेरी स्त्री के हाथ पड़ा—वे उसे हाथ में ले मेरे पास आईं। मैं सिटपिटा गया। मेरी ऐसी धारणा थी कि स्त्रियां स्वभाव से वहमी होती हैं और वे उपन्यास के मूल में सचाई का कुछ सन्देह अवश्य करती हैं। परन्तु मेरा भय निर्मूल था—उन्होंने गद्‌गद् कण्ठ से मेरी उस रचना को सराहा। उसके बाद डरते डरते मैंने उन्हें 'रूप' दिखाया। उसे पढ़कर उन्होंने कुछ कहा नहीं, प्रशंसा से उत्फुल्ल नेत्रों से मेरी ओर देखकर चली गईं। यही मेरी प्रथम आलोचिका थीं। उसके बाद मित्र २ मित्रों को दिखाया—फड़क गये। मुझे साहस हुआ या धृष्टता—सो कुछ नहीं कह सकता, मैंने समझा यह तो रचना है और बढ़िया रचना है। मैंने उसे तब साहित्य-चटोरों को दिखाया—सभी की जीभ चटखारे लेने लगी।

इस रचना में कुछ अभाव रह गये। कुछ नये निबन्ध बढ़ाने थे और कुछ को संशोधन करना था। पर हाजी मुहम्मद के मरने पर जी बैठ गया—कितनी बार चेष्टा की, पर न नया लिख सका—न पिछलों को सुधार सका। तबीयत हाजिर ही नहीं हुई।

अब जैसी है, हाजिर है। इसमें और कुछ नहीं हो सकता—किसी तरह नहीं हो सकता। इसी रूप में पाठक इससे कुछ सन्तुष्ट हो सकेंगे तो मेरी अन्तरात्मा की सर्दी बहुत कुछ मिट जायगी।

प्रख्यात साहित्य भ्रमर श्रीयुक्त पण्डित पद्मसिंहजी शर्मा को—जिनके हृदय सरोवर में—अब और तब का, यहां और वहां का, सब जातका —रस भरा पड़ा है और जिनका मस्तिष्क हिन्दी-संस्कृत-फारसी और उर्दू की प्रायः समस्त साहित्य की लायब्रेरी है—धन्यवाद देने में मैं असमर्थ हूँ। जिन्होंने अत्यन्त बारीकी से इस तुच्छ सी रचना पर अपनी छोटी सी किन्तु गम्भीर भूमिका लिखकर इसे उपादेय बना दिया है।

अलबत्ता मैं श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने इस अटपटी रचना को अपनी ख्यातिलब्ध सीरीज़ में स्थान देकर मुझे उपकृत किया है। इस सीरीज में मेरी यह दूसरी पुस्तक है।

६-२-३१ }
बम्बई }

—श्रीचतुरसेन वैद्य

दश वर्ष बाद



'अन्तस्तल' दश वर्ष बाद दुबारा छपकर पाठकों के सन्मुख जा रहा है। इन दश वर्षों में बहुत-कुछ जीवन बदल गया। फिर 'अन्तस्तल' वहीं कहाँ रहता? इच्छा थी कि 'अन्तस्तल' की सभी वेदनाओं को इस बार आपके सम्मुख रखदूँ। मगर समय सहायक नहीं, नई क़िस्त में 'भग्न' उपस्थित है, फिलहाल पाठक इसी पर सन्तोष करें, मेरी यह विधवा रचना-युगधर्म का अनुसरण कर-एक बार 'दुलहिन' बनने की हविस पूरी किया चाहती है। जीवित रहा, और सम्भव हुआ, तो इस हविस को पूरी करने की चेष्टा करूँगा। नहीं कह सकता, देखकर आप रोवेंगे या हँसेंगे।

इस बार इसे हिन्दी के उदीयमान लेखक, मेरे अतिप्रिय, बाबू ऋषभचरण जैन प्रकाशित कर रहे हैं, इसका मुझे विशेष आनन्द है।

नई दिल्ली
ता० ९-१२-३०

श्रीचतुरसेन वैद्य

रूप

उस रूपकी बात मैं क्या कहूँ ? काले बालोंकी रात फैल रही थी और मुखचन्द्र की चाँदनी छिटक रही थी, उस चाँदनीमें वह खुला धरा था। सोनेके कलसोंमें भरा हुआ था और उनका मुँह खूब कस कर बँध रहा था, फिर भी महकें फूट रही थीं। उस पर आठ दस चम्पेकी कलियाँ किसीने डाल दी थीं। भौंरे भीतर घुसनेकी जुगत सोच रहे थे। मदन कमान लिये खड़ा रखा रहा था। उसका सहचर यौवन अलकसाया पड़ा था, न उसे भूख थी न प्यास, छका पड़ा था।

दश वर्ष बाद



'अन्तस्तल' दश वर्ष बाद दुबारा छपकर पाठकों के सन्मुख जा रहा है। इन दश वर्षों में बहुत-कुछ जीवन बदल गया। फिर 'अन्तस्तल' वहीं कहाँ रहता ? इच्छा थी कि 'अन्तस्तल' की सभी वेदनाओं को इस बार आपके सम्मुख रखदूँ। मगर समय सहायक नहीं, नई किस्त में 'मग्न' उपस्थित है, फिलहाल पाठक इसी पर सन्तोष करें, मेरी यह विधवा रचना-युगधर्म का अनुसरण कर-एक बार 'दुलहिन' बनने की हविस पूरी किया चाहती है। जीवित रहा, और सम्भव हुआ, तो इस हविस को पूरी करने की चेष्टा करूँगा। नहीं कह सकता, देखकर आप रोवेंगे या हँसेंगे।

इस बार इसे हिन्दी के उदीयमान लेखक, मेरे अतिप्रिय, बाबू ऋषभचरण जैन प्रकाशित कर रहे हैं, इसका मुझे विशेष आनन्द है।

नई दिल्ली
ता० ९-१२-३०

श्रीचतुरसेन वैद्य

सब भूल गया। कलेजा जल रहा था–जीभ ऐंठ रही थी। कौन विचार करता? मैंने दो कदम बढ़ कर उसे उठाया और खड़े ही खड़े पी गया, हाँ खड़े ही खड़े !!

पर प्याले बहुत छोटे थे, हाँ बहुत ही छोटे थे। उनमें कुछ आया नहीं। उस चम्पे और चाँदनीने जो उसे शीतल किया था और उस मिश्रीने जो उसे मधुरा दिया था, उससे कलेजे में ठण्डक पड़ गई। वह ठण्डक न कभी देखी थी न चखी थी। मैं मूर्ख की तरह प्याला लिये उसकी ओर देखने लगा। उसने शायद कहना चाहा "और लोगे" मैंने कहना चाहा "जी तो करता है, बहुत ही प्यासा हू, प्याले बहुत ही छोटे हैं, तिसपर उनमें टूटना निकला हुआ है, इनमें कितना आवेगा? क्या और है?"

उसने मानों कह ही दिया–"बहुत है, पर भीतर है, घड़ों का मुह खोलना पड़ेगा—बाहर तो इतना ही था! क्या बहुत प्यासे हो?"

सभ्यता भाड़ में गई। कभी खातिरदारीका बोझ किसी पर नहीं रखता था। पराये सामने सदा सकोचसे रहता था–पर उस दिन निर्लज्ज बन गया। मैंने लम्बा

मैं बडा प्यासा था। हार कर आ रहा था। शरीर और मन दोनों चुटीले हो रहे थे, कलेजा उबल रहा था और हृदय झुलस रहा था। मैं अपनी राह जा रहा था। मुझे आशा न थी कि बीचमें कुछ मिलेगा। पर मिल गया। सयो. की बात देखो कैसी अद्भुत हुई। और समय होता तो मैं उधर नहीं देखता। मैं। क्या भिखारी हू या नदीदा हू जो राह चलते रस्ते पडी वस्तु पर मन चलाऊँ? पर वह अवसर ही ऐसा था। प्यास तडपा रही थी-गर्मी मार रही थी और अतृप्ति जला रही थी। मैंने कहा-जरासा इसमें से मुझे मिलेगा? भूल गया, कहा कहाँ? कहनेकी नौबत ही न आई—कहने की इच्छा मात्र की थी। पर उसीसे काम सिद्ध हो गया-उसने आँचलमें छान कर प्यालेमें उडेल-एक डली मुस्कानकी मिश्री मिलाई और कहा-लो, फिर भूला, कहा सुना कुछ नहीं। आँचलमें छान प्यालेमें डालकर, मिश्री मिला कर सामने धर दिया। चम्पेकी कलियाँ उसीमें पडी थीं-महक फूट रही थी। मैं ऐसी उदासीनतासे किसी की वस्तु नहीं लेता हू-पर महकने मार डाला। आत्मसम्मान, सभ्यता, पदमर्यादा

सब भूल गया। कलेजा जल रहा था–जीभ ऐंठ रही थी। कौन विचार करता? मैंने दो कदम बढ कर उसे उठाया और खड़े ही खड़े पी गया, हाँ खड़े ही खड़े!!

पर प्याले बहुत छोटे थे, हाँ बहुत ही छोटे थे। उनमें कुछ आया नहीं। उस चम्पे और चाँदनीने जो उसे शीतल किया था और उस मिश्रीने जो उसे मधुरा दिया था, उससे कलेजे में ठण्डक पड गई। वह ठण्डक न कभी देखी थी न चखी थी। मैं मूर्ख की तरह प्याला लिये उसकी ओर देखने लगा। उसने शायद कहना चाहा "और लोगे" मैंने कहना चाहा "जी तो करता है, बहुत ही प्यासा हूं, प्याले बहुत ही छोटे हैं, तिसपर उनमें टूटना निकला हुआ है, इनमें कितना आवेगा? क्या और है?"

उसने मानों कह ही दिया–"बहुत है, पर भीतर है, घड़ों का मुह खोलना पड़ेगा—बाहर तो इतना ही था! क्या बहुत प्यासे हो?"

सभ्यता भाड में गई। कभी खातिरदारीका बोझ किसी पर नहीं रखता था। पराये सामने सदा सकोचसे रहता था–पर उस दिन निर्लज्ज बन गया। मैंने ललचा

मैं बड़ा प्यासा था। हार कर आ रहा था। शरीर और मन दोनों चुटीले हो रहे थे, कलेजा उबल रहा था और हृदय झुलस रहा था। मैं अपनी राह जा रहा था। मुझे आशा न थी कि बीचमें कुछ मिलेगा। पर मिल गया। संयोग की बात देखो कैसी अद्भुत हुई। और समय होता तो मैं उधर नहीं देखता। मैं, क्या भिखारी हूँ या नदीदा हूँ जो राह चलते रक्खे पड़ी वस्तु पर मन चलाऊँ? पर वह अवसर ही ऐसा था। प्यास तड़पा रही थी-गर्मी मार रही थी और अतृप्ति जला रही थी। मैंने कहा-जरासा इसमें से मुझे मिलेगा? भूल गया, कहा कहाँ? कहनेकी नौबत ही न आई—कहने की इच्छा मात्र की थी। पर उसीसे काम सिद्ध हो गया-उसने आँचलमें छान कर प्यालेमें उडेल-एक डली मुस्कानकी मिश्री मिलाई और कहा-लो, फिर भूला, कहा सुना कुछ नहीं। आँचलमें छान प्यालेमें डालकर, मिश्री मिला कर सामने धर दिया। चम्पेकी कलियाँ उसीमें पड़ी थीं-महक फूट रही थी। मैं ऐसी उदासीनतासे किसी की वस्तु नहीं लेता हूँ-पर महकने मार डाला। आत्मसम्मान, सभ्यता, पदमर्यादा

सब भूल गया। कलेजा जल रहा था–जीभ ऐंठ रही थी। कौन विचार करता ? मैंने दो कदम बढ़ कर उसे उठाया और खड़े ही खड़े पी गया, हाँ खड़े ही खड़े !!

पर प्याले बहुत छोटे थे, हाँ बहुत ही छोटे थे। उनमें कुछ आया नहीं। उस चम्पे और चाँदनीने जो उसे शीतल किया था और उस मिश्रीने जो उसे मधुरा दिया था, उससे कलेजे में ठण्डक पड़ गई। वह ठण्डक न कभी देखी थी न चखी थी। मैं मूर्ख की तरह प्याला लिये उसकी ओर देखने लगा। उसने शायद कहना चाहा "और लोगे" मैंने कहना चाहा "जी तो करता है, बहुत ही प्यासा हूं, प्याले बहुत ही छोटे हैं, तिसपर उनमें टूटना निकला हुआ है, इनमें कितना आवेगा ? क्या और है ?"

उसने मानों कह ही दिया–"बहुत है, पर भीतर है, घड़ों का मुंह खोलना पड़ेगा—बाहर तो इतना ही था! क्या बहुत प्यासे हो ?"

सभ्यता भाड में गई। कभी खातिरदारीका बोझ किसी पर नहीं रखता था। पराये सामने सदा संकोचसे रहता था–पर उस दिन निर्लज्ज बन गया। मैंने ललचा

कर कह ही दिया—"बहुत प्यासा हूँ, पर ज्यादा तकलीफ होगी। ? न ही तो आने दो, इन प्यालियों में आता ही कितना है ?"

उसने कहा—"तो चलो घर, मार्ग में खड़े खड़े क्यों ? पास ही तो घर है"। मैं पीछे हो लिया।

ढकना खोलते ही गजब हो गया। लबालब था। गाँठ खोलनेका एक हल्काहीसा झटका लगा था, बस छलक कर वह गया। समेटेसे न सिमटा। उसने कहा—"पीओ, पीओ, देखते क्या हो? देखो बहा जाता है-मिट्टीमें मिला जाता है।"

मेरे हाथ पाँव फूल गये। मैंने घबड़ा कर कहा—"यह इतना सारा? इतना क्या मैं पी सकूँगा? यह तो बहुत है। और क्या छानोगी-नहीं?" उसने कहा—"छानने में क्या है। यह आपही निर्मल है। फिर तलछट किसको छोड़ोगे? पी जाओ सब। इतने बड़े मर्द हो—क्या यह नहीं पी सकते?"

मैंने झिझक कर कहा—"और मिश्री? जरासी मिश्री न मिलाओगी?" उसने हँसकर कहा—"मिश्री रहने भी

दो। ज्यादा मीठा होने से सब न पी सकोगे–जी भर जायगा। लो यह नमक मिर्च, चटपटा बनालो–फिर देखना इसका स्वाद!" इतना कहकर उसने जरा यों, और जरा यों बुरक दिया–वह नमक मिर्च काजल सा पिसा हुआ था, बिजली की तरह चमक रहा था। उसने स्वय मिलाया, स्वय पिलाया। भगवान् जाने क्या जादू था, फिर जो होश गया है अब तक बेहोश हूँ।

प्यार

उसने कहा—"नही"
मैंने कहा—"वाह !"
उसने कहा—"वाह"
मैंने कहा—"हू-ऊँ"
उसने कहा—"उहुक्"
मैंने हँस दिया,
उसने भी हँस दिया ।

अँधेरा था, पर बाइसकोपके तमाशेकी तरह सब दीखता था। मैं उसीको देख रहा था। जो दीखता था

उसे बताना असम्भव है। रक्तकी एक एक बूंद नाच रही थी और प्रत्येक क्षणमें सौ सौ हजार चारती थी। हृदयमें पूर्णचन्द्रका ज्वार आ रहा था, वह हिलोरोंमें डूब रहा था, प्रत्येक क्षण में उसकी प्रत्येक तरंग पत्थरको चट्टान बनती थी, और किसी अज्ञात बलसे पानी हो जाती थी। आत्माकी तन्त्रीके सारे तार मिले धरे थे, उंगली छुआते ही सब झनझना उठते थे। वायुमण्डल विहागकी मस्तीमें झूम रहा था। रातका आँचल खिसक कर अस्तव्यस्त हो गया था। पर्वत नंगे खड़े थे और वृक्ष इशारे कर रहे थे। तारिकायें हँस रही थी। चन्द्रमा बादलोंमें मुह छिपा कर कहता था—'भई! हम तो कुछ देखते भालते हैं नहीं।' चमेलीके वृक्ष पर चमेली के फूल—अँधेरेमें मुह भींचे गुप-चुप हँस रहे थे। उन्होंने कहा—'जरा इधर तो आओ।' मैंने कहा—"अभी ठहरो।" वायुने कहा—"हैं! हैं! यह क्या करते हो?" मैंने कहा—"दूर हो, भीतर किसके हुक्मसे घुस आये तुम?" खटसे द्वार बन्द कर लिया। अब कोई न था। मैंने अघा कर साँस ली। वह साँस छातीमें छिप रही। छाती फूल गई। हृदय धड़कने लगा। अब क्या

होगा ? मैंने हिम्मत की। पसीना आ गया था। मैंने उनकी पर्वा न की।

आगे बढ़कर मैंने कहा—"जरा इधर आना"।

उसने कहा—'नहीं,"

मैंने कहा—"वाह !"

उसने कहा—'वाह"

मैंने कहा—"हूँ—ऊ"

उसने कहा—'उहुक्'

मैंने हँस दिया।

उसने भी हँस दिया।

न मानोगी ? बडी पक्के टीदे की हो । अच्छा, नहीं जाते– नहीं जाते, एक से लाख तक नहा जाते । कह दिया, करलो क्या करना है। आज सब बदले ले लेना–जन्म जन्म के बैर चुकाना। आने। दो अम्मा जी को । तुम्हारे यह कैसे लच्छन हैं-जी ? ना, हमें यह छिछोरपन अच्छा नहीं लगता। राजी राजी समझतीही नही । कुछ बालक हो, वाह जी वाह, सुसराल में जाकर यही लच्छन सीख आई हो । हटो ! मैं तुमसे नहीं बोलती । अच्छा, आखिर मतलब भी कहो ? काम क्या है ? मैं क्यों अनहोनी करू ? पानी तुम दे आओ, बुद्धो को भेज दो--मुझ पर ही दण्ड क्यों ?

हद्द होगई । यह कैसी हठ है ?,न जाऊँगी न जाऊँगी– न जाऊँगी, बस– कितनी बार कहू ? लो मैं रसोई मे जाये बैठती हू–नाक में दम कर दिया–चैन नहीं लेने देतीं।

हाय करम ! भगवान ने कैसे दु ख दिये –देखो मेरा जी अच्छा नहीं है। नहीं, मैं इतना हठ न करती–तुम्हारी बात क्या कभी टाली है ? आओ चलो--तुम्हारी कोठरीमें,चलकर मजे से सोवें। खूब गर्माई रहेगी।

कह दिया है–मैं रूठ जाऊँगी। एक बार सुनी, दो बार सुनी। तुम तो हाथ धोकर पीछे ही पड गईं, अच्छा जाओ आज मैं रसोई नहीं जीमूगी, मुझे भूख नहीं है, मेरे सिरमें दर्द है–पेट दुखता है। अपनी ही कहे जाती हो, किसी के दुखकी भी खबर है। यह लो हँसी ही हँसी। इतना क्यों हंसती हो। हटो मैं नहीं बोलती–वाह !

मेरी अच्छी बीबी ! बडी लाडो बीबी जी ! देखो भला कहीं ऐसा भी होता है ! राम राम। मैं तो लाज से गढी जाती हू। तुम्हें तो हया न लिहाज। देखो हाथ जोडू, धीरे२ तो।बोलो–हाय ! धीरे धीरे, अरे नहीं, गुदगुदी क्यों करती हो ? नोंचो। मत जी ! तुम्हें हो क्या गया है ? कोई सुन लेगा, धकेलो मत। देखो मेरे लग गया। पैर का अगूठा कुचल गया। हाय मैया ! बडी निर्दयी हो, मैं तुम्हें ऐसा न जानती थी। अम्मा जी के जाने से तुम्हारी बन आई। अब मालूम हुआ, भोले चेहरे में ये गुन छिपे पडे थे ! ठर क्या है ? दिन निकलने दो। सब समझ लूगी। आई चलकर धक्का देने वाली। वाह जी ! हटो–अब तुम मुझे मत छेडना–हायरे ! मेरा अगूठा।

न मानोगी ? बड़ी पक्के ढीठे की हो। अच्छा, नहीं जाते--नहीं जाते, एक से लाख तक नहा जाते। कह दिया, करलो क्या करना है। आज सब बदले ले लेना--जन्म जन्म के बैर चुकाना। आने, दो अम्मा जी को। तुम्हारे यह कैसे लच्छन हैं--जी ? ना, हमें यह छिछोरपन अच्छा नहीं लगता। राजी राजी समझतीही नहीं। कुछ बालक हो, वाह जी वाह, सुसराल में जाकर यही लच्छन सीख आई हो। हटो ! मैं तुमसे नहीं बोलती। अच्छा, आखिर मतलब भी कहो ? काम क्या है ? मैं क्यों अनहोनी करूं ? पानी तुम दे आओ, बुद्धा को भेज दो--मुझ पर ही दण्ड क्यों ?

हद्द होगई। यह कैसी हठ है ?, न जाऊंगी-- न जाऊँगी-- न जाऊंगी, बस-- कितनी बार कहूं ? लो मैं रसोई में जाये बैठती हूं--नाक में दम कर दिया--चैन नहीं लेने देतीं।

हाय करम ! भगवान ने कैसे दु ख दिये--देखो मेरा जी अच्छा नहीं है। नहीं, मैं इतना हठ न करती--तुम्हारी बात क्या कभी टाली है ? आओ चलो--तुम्हारी कोठरीमें, चलकर मजे से सोवें। खूब गर्माई रहेगी।

क्यों ? इसमें क्या हर्ज है ? इसी तरह क्या रोज नहीं सोते थे ? आजही-मक्खी ने छींक दिया ? चलो, नखरे मत करो। अच्छा देखो--आज तुम मेरी बात मानलो--कल जैसा तुम कहोगी मान लूगी। बस अब तो राजी ! चलो उठो। उठो ! अब नखरे मत करो। मेरी बीबीजी बडी अच्छी हैं।

हे भगवान् ! हे जगदीश ! हे परब्रह्म ! यह आज कैसा सङ्कट आया। हे मुकुन्द मुरारी ! किसी तरह लाज बचाओ। बुरी फँसी। हाय करम ! अच्छा--चलो तुम भी साथ चलो--तुम्हें मैं छोडने वाली नहीं हू। चलो। अब नानी क्यों मरती है ? 'लगाके भुस में आग जमालो दूर खडी,' तुम्हारी यह मसल है। मैं तुम्हें छोडने वाली नहीं। तुमने बहुत मेरा नाक में दम किया है। ना--कितना ही मचलो--छोडू गी नहीं। बनाओ--बहाने बनाओ। अब मेरी बारी है।

हर-बातमें तुम्हारी ही चलेगी ? मैं कुछ हू ही नहीं। तो तुम्हें बाघ खा लेंगे ? तो जाने दो मैं भी नहीं जाती। हरे राम ! इस दु ख से तो मौत ही अच्छी ! अच्छा ! पर देखो बाहर खडी रहना। देखो--तुम्हें मेरी कसम ! हाय ! हाय ! यह क्या कर रही हो। अच्छा आगे आगे चलो ! अरे !

और घास का बल्ला। उन्होंने गलीके छोरसे आकर गेंद लपक ली। हरा कोट पहने थे और सिर पर सलमेकी टोपी थी। छोटा सा मुह था और सुनहरे बाल कन्धेपर लहरा रहे थे। उम्र कितनी थी सो नहीं बता सकता, जिस बातको समझने का ज्ञान नहीं था—आवश्यकता नहीं थी, अब वह कैसे याद आ सकती है? वे मेरे आखों मे गढ़ गये। मैंने आगे बढ़ कर कहा–'तुम खेलोगे?" उन्होंने कहा–"खिलाओगे?" मैंने खिला लिया। वही पहला दिन था। इस जन्ममें वही पहली मुलाकात थी। उसी दिन से हम एक हुए।

महल्ले में उनका घर था। पर वे उसमें कभी रहे नहीं थे। उनके पिता विदेशमें नौकरी करते थे। उन्हींके साथ वे भी वहीं रहते थे। अब वे वहीं स्कूलमें भर्ती हुए, मैं फेल हो कर, एक साल पीछे आ रहा। हम लोग एक साथ पढ़ने लगे। एक श्रेणीमें बैठने लगे। कैसे सुन्दर वे दिन थे, यह कहना असम्भव है। एक बेञ्च पर बैठते थे। उनका हिसाब अच्छा था। मैं उसमें कमजोर था। वे मेरी ओर झुका देते थे। मैं मास्टर की नजर बचा–

वियोग

वे मुझे महाशय कहकर पुकारते थे और मैं उन्हें हरीश कहा करता था। उनका पूरा नाम तो हरिश्चन्द्र था, पर मैं प्यारसे उन्हें हरीश कहा करता था। बचपन से—जब कि वे नगे होकर नहाया करते थे—तब तक, जब तक कि वे बडे भारी इन्जीनियर हुए— मैंने बराबर उन्हें इसी नाम से पुकारा। इन्जीनियर होनेके ६ दिन बाद ही तो वे मरगये!

बहुत दिन बीत गये हैं—धुधलीसी याद है। मैं अपने घरके पिछवाडी, गेंद बल्ला खेल रहा था। रुई की गेंद थी

और घास का बल्ला। उन्होंने गलीके छोरसे आकर गेंद लपक ली। हरा कोट पहने थे और सिर पर सलमें की टोपी थी। छोटा सा मुह था और सुनहरे बाल कन्धेपर लहरा रहे थे। उम्र कितनी थी सो नहीं बता सकता, जिस बातको समझने का ज्ञान नहीं था—आवश्यकता नहीं थी, अब वह कैसे याद आ सकती है? वे मेरे आखों मे गढ गये। मैंने आगे बढ कर कहा—"तुम खेलोगे?" उन्होंने कहा—"खिलाओगे?" मैंने खिला लिया। वही पहला दिन था। इस जन्ममे वही पहली मुलाकात थी। उसी दिन से हम एक हुए।

,महल्ले में उनका घर था। पर वे उसमें कभी रहे नहीं थे। उनके पिता विदेशमे नौकरी करते थे। उन्हींके साथ वे भी वहीं रहते थे। अब वे यहीं स्कूलमें भर्ती हुए, मैं फेल हो कर, एक साल पीछे आ रहा। हम लोग एक साथ पढने लगे। एक श्रेणीमे बेठने लगे। कैसे सुन्दर वे दिन थे, वह कहना असम्भव है। एक बेञ्च पर बैठते थे। उनका हिसाब अच्छा था। मैं उसमें कमजोर था। वे स्लेट मेरी ओर झुका देते थे। मैं मास्टर की नजर बचा—

वियोग

वे मुझे महाशय कहकर पुकारते थे और मैं उन्हें हरीश कहा करता था। उनका पूरा नाम तो हरिश्चन्द्र था, पर मैं प्यारसे उन्हें हरीश कहा करता था। बचपन से—जब कि वे नगे होकर नहाया करते थे—तब तक, जब-तक कि वे बडे भारी इन्जीनियर हुए— मैंने बराबर उन्हें इसी नाम से पुकारा। इन्जीनियर होनेके ६ दिन बाद ही तो वे मरगये!

बहुत दिन बीत गये हैं—धुधलीसी याद है। मैं अपने घरके पिछवाडी, गेंद बल्ला खेल रहा था। रुई की गेंद थी

छुट्टीका दिन बुरा दिन था। गर्मीकी छुट्टिया तो काल थीं। उस में वे पिता के पास चले जाया करते थे। दो महीने का वियोग होता था।

जब वे ज्यादा लाड में आते थे तो 'तू तू' करके बोलते थे। और भी ज्यादा प्यार करते तो घूसोंसे घडते थे। मैं उन्हें कभी न मारता था, उनकी माता पर फरियाद करता था,वे उन्हें धमका कर कहतीं थीं--"पगले ! बडे भाई से इस तरह बोला करते हैं ? ऐसा गधापन किया करते हैं?" तब वे अपनी माको इतरा कर जवाब देते "अम्मा ! तेरा बेटा बडा बदमाश हो गया है, यह बिना पिटे ठीक न होगा।" बुढिया झुंझला कर वहासे बडबडाती उठ जाती थी। हम लोग खिलखिलाते ही ही, हू हू करते, धमर कुटाई करते, अपने रस्ते लगते थे।

कितनी बार अन्धेरे कमरेमें हम एक साथ सोये हैं। कितनी चादनी रातें गगाके उपकूल पर बिताई हैं। कितने प्रभातोंकी गुलाबी हवामें हमने एक साथ स्वर मिला कर गाया है। दोपहरकी चमकीली धूपमें स्वच्छन्द विहार किया है। वर्षा ऋतुमें हम जगलमें निकल जाते, माधो

उनकी नक़ल करलेता था । उसके बदलेमें कुछ चित्र और कवितायें मुझे उन्हें तयार कर देनी पडती थी। इनका मुझे शौक था और उन्हें चाव । एकके अपराध पर दूसरा पिट लेना तो मानों खजाना पा लिया। घण्टों पहले स्कूल में जा बैठते थे। बातों का तार कभी नहीं टूटता था। रोग तो देखा नहीं था, चिन्ता से तब तक ब्याह नहीं हुआ था, शोकका अभी जन्म ही नहीं हुआ था। मौज थी, उछाह था, प्रेम था । हम दोनों उसे खूब खाते थे और बखेरते थे।

मुझे रोज एक पैसा पिता जी देते थे । अठवाड़े के पैसे इकट्ठे करके मैं उनको दावत करता था। जंगल के एकान्त में चांदनी की चमकमें हम लोग एक दूसरे को देखा करते थे। अब कुछ याद नहीं रहा, क्या बातें होती थी, पर इतना कह सकता हूं कि कांग्रेसमें,बड़े लाटकी कौन्सिलमें व्याख्यान देकर, बड़े बड़े राजा महाराजाओं से मुलाकात करके जो गर्व—जो प्रसन्नता आज नहीं मिलती है, वह उस बातचीत में मिलती थी। जिस दिन वह बात न होती थी उस दिन नींद न आती थी, भोजन न रुचता था

छुट्टीका दिन बुरा दिन था। गर्मीकी छुट्टियां तो काल थीं। उस में वे पिता के पास चले जाया करते थे। दो महीने का वियोग होता था।

जब वे ज्यादा लाड में आते थे तो 'तू तू' करके बोलते थे। और भी ज्यादा प्यार करते तो घूसोंसे घडते थे। मैं उन्हें कभी न मारता था, उनकी माता पर फरियाद करता था, वे उन्हें धमका कर कहती थीं--"पगले! बडे भाई से इस तरह ठोला करते हैं? ऐसा गधापन किया करते हैं?" तब वे अपनी माको इतरा कर जवाब देते-"अम्मा! तेरा बेटा बडा बदमाश हो गया है, यह बिना पिटे ठीक न होगा।" बुढिया भुभला कर वहासे बडबडाती उठ जाती थी। हम लोग खिलखिलाते ही ही, हू हू करते, धमर कुटाई करते, अपने रस्ते लगते थे।

कितनी बार अन्धेरे कमरेमें हम एक साथ सोये हैं। कितनी चादनी रातें गगाके उपकूल पर बिताई हैं। कितने प्रभातोंकी गुलाबी हवामें हमने एक साथ स्वर मिला कर गाया है। दोपहरकी चमकीली धूपमें स्वच्छन्द विहार किया है। वर्षा ऋतुमें हम जगलमें निकल जाते, माधो

दास के बाग से एक टोकरा आम भर ले जाते और नहर में जल बिहार करते और आम चूसते-गुठलियोंकी चादमारी करते। गर्मी के दिनों में प्रात काल ही खेत पर आ बैठते और ताजे ताजे खर्बूजे खाते। वे प्राय. कहा करते-"तुम मुझसे इतना प्रेम मत बढाओ। मुझे डर लगता है—तुम नाराज हो गये तो मैं कैसे जीऊगा।" कभी वे मेरे हाथको देखकर कहते—"महाशय! तेरी उम्रकी रेखा तो बहुत ही छोटी है।" मैं देखकर कहता-"अच्छा मैं मर जाऊगा तो तू रोवेगा तो नहीं?" वे बडी देर सोचकर कहते-"रोऊगा तो जरूर" इसके बाद वे कुछ और कहना चाहते थे—पर मैं समझ जाता था-मुह भींच देता था, बोलने देता ही न था।

हम लोग कभी झूठ न बोलते थे, कभी छल न करते थे। पर हा लड कभी कभी पडते थे। पर वह लडाई बडे मजेकी होती थी। उसमें जो हार मान लेता था—उसीकी जीत होती थी और उसीकी खुशामद होती थी। जीतने वाले को उसे जगल में या छत पर लेजाकर गलेमें बाह डाल कर मिठाई खिलानी पडती थी। कभी कभी बडा सा

गुलाब जामुन मुहमे ठूस देना पडता था। और कभी कभी ? हां उसे भी अब न छिपाऊगा, वही गुलाब जामुन आधा उसके मुहमे देकर आधा दातोंसे कुतर लेना पडता था। हम लोग एक दूसरे को पढा करते थे। हमारे बीच में कोई न था। हम दोनों एक थे। हममे एक प्राण था, एक रस था, एक दिल था-एक जान थी।

पर यह देर तक रही नहीं। हृदयसे भीतर न रहा गया। वह हवा खाने बाहर निकला। कुछ काम काज का भार भी उस पर पडा। बस हवा बह चली, तार टूट गया। मोती बिखर गये। बुद्धि बढगई। अपनेको पहचानने लगे। पाजी ज्ञानने कान भर दिये। डायन बुद्धिने बहका दिया। हमने अपनी अपनी ओरको देखा। अपनी अपनी सुध ली। उसी क्षणसे परस्पर को देखना कम हुआ। परस्परकी सुध लेनेकी सुध ढीली पड गई। वही ढील कहा की कहा ले गई ? न पूछो-कथाका यह भाग बहुत ही कड़ुआ है।

हम लोग अपने अपने रस्ते लगे। अब चिट्ठियों का तार बचा था-वही केवल पुल था। पहिली चिट्ठी पूरे १५ दिनमे मिली थी। गुलाबी लिफाफा था। वह फट

दास के बाग से एक टोकरा आम भर ले जाते और नहर मे जल-विहार करते और आम चूसते-गुठलियोंकी चाद मारी करते। गर्मी के दिनों मैं प्रात. काल ही खेत पर आ बैठते और ताजे ताजे खर्बूजे खाते। वे प्राय' कहा करते-'तुम मुझसे इतना प्रेम मत बढाओ। मुझे डर लगता है—तुम नाराज हो गये तो मैं कैसे जीऊगा।" कभी वे मेरे हाथको देखकर कहते—"महाशय! तेरी उमृकी रेखा तो बहुत ही छोटी है।" मैं देखकर कहता-"अच्छा मैं मर जाऊगा तो तू रोवेगा तो नहीं?" वे बडी देर सोचकर कहते-"रोऊगा तो जरूर" इसके बाद वे कुछ और कहना चाहते थे—पर मैं समझ जाता था-मुह भींच देता था, बोलने देता ही न था।

हम लोग कभी झूठ न बोलते थे, कभी छल न करते थे। पर हा लड कभी कभी पडते थे। पर वह लडाई बडे मजेकी होती थी।उसमें जो हार मान लेता था—उसीकी जीत होती थी और उसीकी खुशामद होती थी। जीतने वाले को उसे जगल में या छत पर लेजाकर गलेमें बाह डाल कर मिठाई खिलानी पडती थी। कभी कभी वडा सा

गुलाब जामुन [illegible]
हा उसे भी अब न [illegible], [illegible]
उसके मुहमें देकर [illegible]
हम लोग एक दूसरे को [illegible]
में कोई न था। हम दोनों एक थे। [illegible]
एक रस था, एक दिल [illegible]।

पर यह देर तक रही नहीं। [illegible]
गया। वह हवा मानो बाहर निकला। [illegible]
भार भी उस पर पड़ा। उस हवा वह [illegible]
गया। मोती बिखर गये। बूंदि रहगई। [illegible]
नने लगे। पाजी झानने कान मर दिये। [illegible]
बहका दिया। हमने अपनी अपनी [illegible]
अपनी सुध ली। उसी क्षणसे परस्पर [illegible]
हुआ। परस्परकी सुध लेनेकी सुध [illegible]
ढील कहा की कहा ले गई? न [illegible]
बहुत ही कडुआ है।

हम लोग अपने अपने रस्ते लगे। अब चिट्ठियों का
तार बचा था—वही केवल पुल था। पहिली चिट्ठी पूरे
१५ दिनमें मिली थी। गुलाबी लिफाफा था। वह फट

कर चूर हो गया है । पर अब तक भरा है । स्वप्नमें भी न सोचा था कि उसकी उम्र उनसे बडी होगी । कैसा सुन्दर वह पत्र था । सरल तरल प्रेमको वह वस्तु आज तक जीवन को जीवन देती है । फिर तो कितने पत्र आये गये । अभी तक इतना जरूर था—हम लोग बुद्धिमान अवश्य हो गये थे, पर पत्रमें बुद्धिमानी को काम में न लाते थे ।

तीन साल तक पत्रव्यवहार बन्द रहा । पर समाचार मिलते रहे । दोपहर का समय था । मैं भोजन के आसन पर जाकर बैठा । मेरी स्त्री थाली परस रही थी । एक कार्ड मिला ।उसमें उनका मृत्युसमाचार था । मैं मरता तो क्या ? न रोया, न बोला, न भोजन छोडा । चुप-चाप भोजन करने लगा । उठकर बैठकमें लेट गया । रोना फिर भी न आया । बहुत इरादा किया पर व्यर्थ । हार कर सो गया ।

पर अब ज्यों ज्यों दिन बीत रहे हैं, बात पुरानी हो रही है, मैं रोता हू । जब अकेला होता हू तब रोता हू । जब कोई दुःख देता है तब रोता हू । जब कोई धोखा देता है,

अपमान करता है तब रोता हूं। जब कोई चिन्ता होती है तब रोता हूं। जब उत्तम भोजन सामने आता है तब रोता हू। जब कोई बात हँसीकी देखता हूं तो रोता हूं। किसी बालक को हरा कोट पहने देखता हू तो रोता हूं। कहीं ब्याह होने देखता हू तो रोता हूं। मेरे जीवन के प्रत्येक दैनिक कार्य इसी योग्य हो गये हैं कि बिना रोये उनमें स्वाद ही नहीं आता। हजार जगह रोता हूं, जन्म भर रोऊंगा।

कभी उन्हें स्वप्नमें देखता हूं। वही स्कूलकी पुस्तकों का बण्डल बगलमें, वही खिलवाड़ की बातें-वही ऊधम, वही ही ही हा-हा! वही धौलधप—सब होता है—ह रहू मालूम होता है। पर! पर आंख खोलकर देखता हूं तो मालूम देता है—वह सब स्वप्न है। वे दिन बीत गये हैं। अब मैं बडा हो गया हू। जवान हो गया हूं और अकेला रह गया हू। और? और वे मर गये हैं— पुनर्जीवन है ही नहीं!

क्यों ? सुस्त क्यों हो गये ? ठण्डे क्यों पड गये ? चुप क्यों हो गये ? बोलो न, मेरा जी घबडा रहा है । तुम्हें देखकर बेचैनी बढ रही है । सच कहो मामला क्या है ? तुम्हारे विश्वासपर, तुम्हारी बातोंमें आकर मैंने अपने जन्म जन्मान्तरों की पूजी लगा दी थी । तुम्हारी योग्यता पर मुझे भरोसा था । मैंने तुम्हें देखा भाला नहीं, कुछ खोज-जाँच नहीं की । तुमने जो कहा, आख कान बन्द कर के मान लिया । अब बताओ क्या करू ? न तब तुम्हारा कहना टाला था-न अब टालूगा ।

बताओ न ? अब क्या करू ? चुप क्यों हो ? स्तब्ध क्यों बैठे हो ? क्या कारबार एकदम फेल हो गया ? या दिवाला निकल गया ? मैं अब कहींका न रहा ? बोलो न, इस तरह चुपचाप आह भरने से तो न चलेगा ।

वे दिन अब भी याद हैं । मानो वही दृश्य-वही समय-वही छटा-वही सब कुछ आखोंमें फिर रहा है । पर आखों के सामने कुछ नहीं है । हाय ! कैसी वह नदी थी, कैसा उस पर स्वच्छ चन्द्र और नीलाकाश चमक रहा था, कैसा उसका प्रतिबिम्ब जलमें पड रहा था, कैसी उस

के तटके श्याम छायारूप वृक्ष और लतायें झुक झुक कर पखा कर रहीं थीं। और तुम मुझे कुछ भी पेट भरके देखने नहीं देते थे। जब मैं चन्द्रको देखता था तब तुम कहते—नहीं, पहले इस जलकी छटाको देखो। जब मैं उसे देखता था—तब तुम कहते—नहीं, पहले इस निकुज छायाको देखो। मैं जब उसे देखता तब तुम कहते थे—नहीं, पहले इस छप छप शब्दको सुनो। फिर तुम मेरी आखें बन्द कर देते थे। मुझसे तुम्हें क्या जलन थी? मुझ से तुम्हें क्या चिढ़ थी? तृप्तिसे तुम्हें क्या द्वेष था?

तुम्हारी वह कुलबुलाहट—चुलबुलाहट—कहा गई? अब क्यों इस तरह सुस्त सिर नीचा किये बठे हो। मेरे सर्वनाशकारी वचक! मै तुम्हें दया करके छोड़ूगा नहीं।

किसीकी भी नहीं सुनते थे, प्रेमसे धुन के अन्धे हो गये थे। हसी रुकती ही न थी चैन पड़ता ही नही था। इतना रोका था, धमकाया था, फटकारा था। पर सब चिकने घडे पर पानीकी तरह ढल गया? लो अब बैठे बैठे रोओ!

दुःख

यह असम्भव है। मैं आपसे व्याह नहा कर सकती। मैं बहुत दुःखी हू। मुझे क्षमा कीजिये। मैं भीतर ही भीतर रोगिणी हो रही हू। डाक्टर ने कहा है कि तुम × × × नहीं नही, मैं यह बात आपको अपने मुह से नहीं सुनाऊँगी। आप मेरा मोह त्याग दीजिये। भूल जाइये। यह कठिन है, पर अभ्यास बडी वस्तु है। मैंने अभ्यास किया है, आप भी कीजिये। हम लोग बहुत देर में मिले। समय बीत चुका था। सुख और शान्ति यह

मेरे भाग्य में नहीं थीं। क्यों मेरा बूढ़े से ब्याह होता और क्यों मैं सुहाग की रात को विधवा होती। मैं इतना भी सहती—बहुत स्त्रियां सहती हैं। पर आप क्यों मिल गये! यही कठिन हुआ। यही नहीं सहा जाता। आग जल रही है। जी जला जाता है—पर धैर्य और अभ्यास से वश में करूंगी। यह सच है कि मुझमें प्रलोभन है, पर मैंने उसे चखना एक ओर रहा—छू कर भी नहीं देखा। यही खैर हुई। वरना क्या होता? आज क्या यह पत्र लिख सकती? मन इतना साहस कहां पाता? आंसू आरहे हैं, शरीरका रक्त मस्तक में इकट्ठा होरहा है और नसों की तन्त्री झन झना रही है। रह रह कर मनमें आता है इस पत्र को फाड़ दूं। पर यह असम्भव है। इतनी हिम्मत से—इतने साहस से—इतनी धीरता से जो पत्र लिखा है उसे फाड़ूंगी नहीं। क्या आप इसका मूल्य समझेंगे ?

मैं समझती हूं इस पत्र को पढ़कर आपको वेदना होगी। पर क्या किया जाय? उसे सह लीजियेगा—मेरी ओर देख कर सह लीजियेगा। मैं अबला स्त्री हूं। मुझमें दम ही कितना है! बचपन में पशु पक्षियों को चार दाने

डालकर मुझे कितना गर्व होता था! मैं कितना इतराती थी! यहीं तक मैं दुनियामें किसीको सुख दे सकी। मेरी सेवाका पृथ्वी पर यही उपयोग हुआ। मेरा मानव-जीवन धिक्कार हुआ। पर मुझे यह कभी न मालूम था कि ऐसा उत्तरदायित्व भी तुच्छ स्त्रियों पर आ जाता है। अनेकों की रक्षा में समर्थ आप? आपका सुख दुःख मेरे हाथ में? नहीं नहीं, मुझे इतना न दबाइये। इतना बोझ सहने को शक्ति मुझमें नहीं है। मूर्खा अबला मैं और कितना बल होगा? आप कहें—तो मैं आपका नाम लेकर गंगा में डूब मरू, या नाम जप जप कर भूखी प्यासी मर जाऊं। जरूरत हो तो चमड़ी की जूती बनवा लीजिये। मोल बेच दीजिये। पर! पर मुझसे सुख मत माँगिये, मुझसे सहयोग न होगा। सुख एक तो मेरे पास है ही नहीं— दूसरे जो है भी—वह जूठा, ठण्डा और किरकिरा है— आपके योग्य नहीं है। आप उधर से ध्यान हटा लें, यह मोरी में फेंकने योग्य है। क्या वह मैं आपको दे सकती हूं? उससे तो यही अच्छा है कि आप उसके बिना ही दुखी रहें।

मैं अपने भाग्य पर फिर हाय करती हूं। कोई चारा नहीं, कोई वस नहीं, कोई उपाय नहीं। मैं जानती हूं आप स्वभाव से ही दीन दुखियों को प्यार करते हैं, आप धन्य हैं। मैं भी आपको प्यार करती। पर क्या करूं, प्यार में तो चाहना है और चाहना करने का अधिकार भगवान जानते हैं-मुझसे निरपराध छीन लिया गया है। प्रभु की इच्छा पूर्ण होगी। शरीर से अच्छे रहना।

अनुताप

किसीको मुंह नहीं दिखाता हूं, पर लज्जा फिर भी पीछा नहीं छोड़ती है। छिप कर रहता हूं पर मनमें शान्ति नहीं है। दिन रात भूलने की चेष्टा करने पर भी स्मृतिकी गम्भीर रेखा मिटती ही नहीं है। हृत्पटल पर उसका घाव हो गया है। उधर ध्यान पहुंचते ही वह घाव कसक उठता है। मनकी ज्वाला सांस के साथ भड़क उठती है। आसुओं की अविरल धारा सूख गई—पर उसे न बुझा सकी। सासकी धौंकनीसे वह भड़कती है। चाह मर गई और आशा की जड़को कीड़ा खा गया। रक्त ठण्डा पड़

गया, जीवन का पता नहीं—क्या इरादा रखता है। भवि-
ष्यकी रात घोर अंधेरी है—उसमें एक तारा भी नजर
नहीं आता। वर्तमान अत्यन्त क्षणिक है-पर उसके रोम
रोम में विकलता है। मन जैसे सूख गया है और मैं जैसे
खो गया हूं।

उस दिनके बाद ही सोचा था—बस अब संभल गया।
अब तक ठगाया गया हूं, अब न ठगाया जाऊंगा। काम
का त्याग कर दूंगा। वासना को धक्का दे डालूंगा—चाह
का गला घोंट दूंगा—हृदयको फांसी लगा दूंगा—और
चुपचाप निश्चेष्ट भाव से मृत्युके दिनकी बाट
देखूंगा। किन्तु यह सब कुछ तो किया,—कर्म भी त्यागा,
वासाना को भी धक्का दिया, चाहका भी गला घोंटा,
हृदय को फाँसी भी दी, पर चुप चाप निश्चेष्ट भाव से
मृत्युके दिन की बाट न जोह सका। इन सबके साथ
स्मृतिको भी सखिया दे सकता तो यह सब सफल
होता। अब सब बनने पर भी स्मृति बीचमें आकर
काम बिगाड देती है। यह मेरी उजाड़ और ठण्डी

शान्ति मे आग लगा देती है। मैं चुपचाप-निश्चेष्ट मनसे मरनेके दिन नहीं पूरे कर पाता हू।

वह दिन मुझे याद है-अच्छी तरह याद है-उस दिन मेह बरस रहा था--पर मूसलाधार पानी न था। रिमझिम वर्षा थी। उस दिन, हा उसी दिन उसने मुझे देखा-या मैंने उसे देखा-कुछ याद नहीं-शायद-दोनोंने दोनों को देखा। उस देखने में विष था-पर हमने उसे अमृत समझा। हा, दोनोंने अमृत समझा। भूल हुई। उसी दिन हम मर गये थे, पर समझा जी गये हैं। उसी दिन धोखेमें हम दोनों--मुस्कराये थे! आह! मूर्खता!

वह कुछ बोली नही। लज्जा कर चली गई। मैंने मनमें कहा-कैसी अपूर्व है, कैसी अलौकिक है। तब मैं निर्लज्ज की तरह उसको ओर देखता ही रहा। उसने मेरी निर्लज्जता देखी नहीं--जानेके बाद उसने पीछे फिर कर देखा ही न था। मुझे उस ओर ध्यान न था। जाती बार जो वह मुस्कुराहट बखेर गई थी, उसी पर मैंने आखें बिछादीं।

उसके बाद क्या हुआ था? ठहरो, सोचता हू--हा उसके बाद एक दिन पान का बीड़ा देने आई थी। वह

बीड़ा अभी तक मेरे बक्स में रखा है। खाया नहीं था। उस समय मैंने उसे प्रिय चिन्ह समझ कर रख लिया था। यह सोचा भी न था कि यह मेरा सहचर होगा। कदाचित वह मेरा भविष्य फल था। अथवा इतिहास था। क्यों कि जब वह मेरे हाथ मे आया था—हरा भरा—और रसपूर्ण था। सुगन्ध की लपट के मारे दिमाग मुअत्तर हो रहा था। किन्तु ज्यों ज्यों उसका रस सूखता गया, त्यों त्यों उसमें मेरी समता होती गई। आज उसमें रसगन्ध नही है, बिल्कुल सूखा पत्ता है। मैं भी रसगन्धहीन सूखा—बिल्कुल सूखा पत्ता हू। मेरे जीवनमें और उस पानमें यह समता होगी, इसका मुझे कुछ भी आभास नहीं था—उसे भी नहीं था।

उसके पतिपर मैं सदा से नाराज था। वह मेरा मूर्ख चपरासी था। किन्तु भोला, सच्चा, और हँसमुख था। मेरी भिड़की को हँस कर सह लेना था और हाथ जोड़ कर क्षमा मागता था। इसीसे वह निभ रहा था। पर उसी बदली के दिनमे उसके दिन फिरे। मेरी कृपा

दृष्टि उमड आई। मैंने अपनी स्त्री के द्वारा सुना कि वह इस भाग्यपरिवर्तनका कारण अपनी स्त्रीको समझता है। बात सच थी। मैं लज्जासे धरतीमें गढ गया। पर असल बात और थी—वह पीछे खुली। उसका यह विश्वास था कि मेरी स्त्री वडी भाग्यवान् है, उसके गौना होकर घरमें आते ही मालिक की कृपादृष्टि और वेतनवृद्धि हुई। वह उसे लक्ष्मीके नामसे पुकारने लगा था। पहले उसके विचार पर आश्चर्य हुआ था, पर अब उसका कोई कारण न रहा।

वह बुढिया? ओफ—उसका स्मरण आते ही दम घुटने लगता है—मुद्दतसे मेरे पास आती थी। कभी पैसा मागने और कभी पुराना कपडा मागने। वह मुझे वडे मीठे स्वर से 'बेटा' कह कर पुकारती थी, पर मेरे हृदय में उसके लिये कभी मातृभाव उदय नहीं हुआ। उसकी सूरत ही ऐसी थी। छोटी छोटी साप जैसी आखें, सिकुडे हुए अपवित्र होंठ और बिल्ली जैसी चाल—मुझे भाती न थी! मैं सदा उससे दूर भागता था। फटकारता, गाली देता, पर वह अपनी लल्लो पत्तो नहीं छोडती थी।

उस दिन-उसके बादही वह आई थी। वह प्यारकी पुतली थी और वह घृणाकी डायन थी। कुछ भी तारतम्य न था—पर मेरी बुद्धि चैतन्य हुई या मलिन कुछ नहीं कह सकता—मैंने तारतम्य निकाल लिया। -ठीक कीचड और कमलके समान। उस दिन मैं उसे देख कर मुस्कुराया-एक चवन्नी वखसीस दी। उसने अपनी मनहूस आखोंकी धुन्ध पोंछकर एक वार चवन्नीकी ओर और एकवार मेरे मुस्कुरानेकी ओर देखा। मैंने उसे पास विठाया। बहुत सी वातें कीं, नहीं—नहीं उन्हें चेष्टा करके भुलाया है-अब याद नहीं करूंगा। उन वातोंकी परछाईं—ठीक अंधेरेमें दीये की तरह—आज भी मेरे मनोमन्दिरमें काप रही है। उसीके द्वारा सब कुछ हुआ—उसी छुरी से मैंने सेंध लगाई। उसीके हाथों मैंने वह छकडा भग रूप—मनों यौवन खरीदा। चोरीका माल था-सस्ता ही मिला। कुछ मिठाई के दौने, कुछ सुगन्धित तैल, कुछ साधारण वस्त्र, वस।

उस दिन जव उसने आत्मसमर्पण किया था—वह मदमाती थी पर उसकी आखोंमें आसू थे। वह पापसे डर रही थी। थर थर कापती थी। प्रलोभन बहुत ही भारी

मुखसे लार टपक रही थी। शरीर पर वस्त्र नही था, केवल एक चिथडा था। लडके पीछे धूल फेंक फेंक कर हल्ला मचा रहे थे। वह मेरे पास आकर बच्चेको घूरने लगा—बच्चा डर कर मेरी छाती से चिपक गया। मैंने उस पागलको फटकारा। वह मेरी ओर देख कर कुछ बडबडाया। मैंने उसे पहिचान लिया। कलेजा धक् हो गया। रक्त की गति रुक गई। मैंने कुछ पैसे उसकी ओर फेंक दिये और उससे कहा—जाओ जाओ। पसे लेकर उसने लडकों को लुटा दिये और फिर मेरे बच्चे को घूर घूर कर बडबडाने लगा। बच्चा रो उठा-मैं भीतर चला आया। मेरे घर तब कोई नौकर न था। उसी रातको बच्चा रोगी हुआ और उसके तीन दिन बाद वह भी ठण्डा हुआ। मरती बार वह मुस्कराया था।

मैंने घर-बार-देश सब त्याग दिया है, पर जिसे त्यागना चाहता हू उसे किसी तरह नही त्याग सकता हूँ-किसी तरह नहीं त्याग सकता हू !

शोक

यह मेरा पहला ही बच्चा था। जब यह उत्पन्न हुआ था तब मेरी अवस्था २३ वर्षकी और मेरी स्त्री की १७ वर्ष की थी। मुझे वह दिन याद है। उस दिन छोटी दिवाली थी। प्रातःकाल ज्यों ही उषाकी पहली किरण पृथ्वी पर पड़ी–त्यों ही बिट्टुआका अवतरण हुआ। उस रातभर मैं सोया नहीं था। नई बात थी नया उछाह था, नया सुख था। मैं दौड़ दाई के घर— दौड़ सौर गृह में—दौड़ बैठक में फिर रहा था। कान

कुछ न था। पर विना दौड़ धूप किये जी न मानता था। जब दाई ने आकर कहा कि "बखशीश लाओ, बेटा हुआ," तो मेरे शरीर में खून की गति रुक गई थी—मैं उसे एकटक देखता ही रह गया था। मैंने हार कर उसीसे पूँछा था—"बोल क्या लेगी ?" और माता ने आकर अपना कँगन उसे दे डाला था।

उस घटना को आज पूरे ७ महीने १३ दिन हुए हैं। आज मैंने उसे धरती में गाढ़ दिया। मेरे साथ मेरे और दो तीन बन्धु थे। सबने जी जान से सहायता दी। एकने गढ़ा खोदा—एक ने उस मेंसे मिट्टी निकाली—एकने मेरेलाल को उसमें रख दिया—उसके ऊपर सबने जल्दी २ मिट्टी डाल दी। उनका कहना था—ऐसे काम में भी यदि वे सहायक न हुए, ऐसे मौकों पर ही यदि उन्होंने तत्परता न दिखाई तो उनकी मित्रता ही क्या ? उनका बन्धुत्व फिर किस काम आवेगा ?

परसों शाम को जब मैंने उसे देखा था, तब वह मुझे देख कर हंसा था—अपने नन्हें नन्हें हाथ ऊपर को उठाये थे। पर मैंने उसे गोद मे लिया नहीं। मुझे डर था कि

कहीं बुखार फिर न चढ़ जाय। पर बुखार चढ़ा और जब उतरा, तब बचुआ भी उतर गया। मैं व्यर्थ ही डरा—गोद में भी न ले सका! कुछ तो सुख मिलता, कुछ तो तसल्ली होती। उसके बाद वह फिर न हँसा। आज वह बिलकुल सफेद होगया था। आँखें आधी बन्द थीं—साँस नहीं था—शरीर गर्म था—हाथ पैर नर्म थे—स्त्री रो रही थी—मित्रगण कफन लपेट रहे थे—पर मैं दौड़ा गया, डाक्टर को बुला लाया। मैंने दांत निकाल कर, गिरयाकर उससे कहा—'डाक्टर साहेब! फीस चाहे जो ले लो, पर इसे एक बार अच्छी तरह देख दो, क्या यह बेहोश होगया है? शरीर देखो कितना गर्म है।" डाक्टर ने करुण दृष्टि से मेरी ओर देखा, प्रेम से मेरे कन्धे पर हाथ धर कर कहा—मर्द हो! मर्द की तरह विपत्ति में धैर्य धरो, शोक में स्त्रियों की तरह घबराओ मत, व्यर्थ की आशा और मृगतृष्णा को छोड़ दो। भगवान् की इच्छा पूरी होनी चाहिये।" और वह पूरी हुई।

मेरे हाथ पाव टूट गये। दिल बैठ गया, पर मैं खड़ा रहा। मैंने आवाज करारी बनाये रक्खी—आंसू भी नहीं

गिरने दिया-पर मन नीचेको धसकने लगा। मित्रोंने कहा-चलो खड़े क्यों हो ? मैंने कहा—चलो। मैंने ही उसे हाथों पर रखा था—वह फूल की तरह हल्का था !

आस्मान का इतना ऊंचा ज़ीना वह कैसी सरलता से चढ गया ? याद से दिल की धड़कन बढती है। जिगर में दर्द उठता है। गई। वह चांद सी सूरत गई—वह आंख का नूर गया—वह हृदय की तरावट गई—वह गई—वह होठों की लाल रंगत, वह मुस्कराहट-वह-वह-वह-वह सब चली गई ! ! चली गई। ! ! जैसे फूल से सुगन्ध उड जाती है, जैसे नदी का पानी सूख जाता है, जैसे चन्द्र ग्रहण पड जाता है, ? जैसे ?-ठहरो सोचता हू-जैसे ? नहीं कुछ याद नही आता। जैसे ! हाँ! जैसे दिये का तेल जल जाता है—वैसे ही उसकी नन्हीं सी जान निकल गई थी।

मेरी स्त्री ने कहा—कहा रख आये ? इतनी सर्दी में ? उस गीली मट्टी में ? अक्ल तो नही मारी गई ! जो बचुआ को सर्दी लग जाय ? ये गद्देले और रजाई तो यहा पड़ीं हैं। जो बचुआ की हड्डियों में ठण्ड बैठ जाय तो क्या खासी दम लेने देगी ? इसी लिये तुमको दिया था ? ठहरो

मैं लिये आती हू। वह पागल की तरह दौडी। मेरे सिर मे कई गोलियासी लग रही थीं। भतीजी ने कहा–कहा है भैया? चाची ठहर! मैं लाती हू—चलो बताओ कहा है? बूढ़ी मा बोली नहीं। रो रही थी, रो रही थी, रो रही थी, चुप,–मौन–रो रही थी। चुपचाप ही उसने बेटे को छाती से लगा लिया। मैं स्त्री को कुछ न कह सका। वह मेरे पैरों पर पडी थीं–मैं मानों आसमान की ओर उड रहा था–आखें निकली पडती थीं–दम घुट रहा था—मैंने कमीज का बटन जोरसे तोड डाला। मैं खम्मे का सहारा लिये खडा रहा।

वह एक बार फिर मिला। सन्ध्या काल था और गङ्गा चुपचाप वह रही थी। वह चाँदीसी रेती में फूल जमा जमा कर कुछ सजा रहा था। मैं कुछ दूर था। मैंने कहा—आ-मेरे पास आ। उसने ताली पीटकर कहा–ना, मेरे पास आ। मैं गया। वहा की हवा सुगन्धों से भररही–थी। मैं कुछ ठण्डा सा होने लगा। उसके चेहरे पर कुछ किरणें चमक रही थीं। मैंने कहा–"बिटुआ! धूप में ज्यादा मत खेलो।" उसने हँस दिया। सुन्दरता लहरा उठी।

उसने एक फूल दिखा कर कहा—"अच्छा इस फूल का क्या रँग है ?" मेरा रक्त नाच उठा। अरे ! बेटा तो बोलना सीख गया। मैंने लपक कर फूल उसके हाथ से लेना चाहा वह और दूर दौड गया—उसने कहा—"ना इसे छूना नहीं। इस फूल को दुनिया की हवा नहीं लगी है और न इसकी गन्ध इस मेंसे बाहर को उडी है। ये देव पूजा के फूल हैं—ये विलास की सजाई मे काम न आवेंगे।" इतना कह कर बिटुआ गगा की ओर दौड कर उसीमें खो गया। मैं कुछ दौडा तो-पर पानी से डर गया। इतने में आँख खुल गई। घुप अन्धकार था। हाय वह स्वप्न था ! वह भी आया और गया ? अब ?–

हैं—गलियारे में पडी रहती है। आँसू पीती है, और गम खाती है—फिर भी जवान बनी हुई है—उफ़ है—तुफ है!

कहाँ गई वह नींद? वह भूख? वह हँसी? वह मौज? बैठा रहता हू तो सिर में विचारोंकी रई चलती रहती है, लेटता हू तो खून की बूँदें नाचती हैं, सोता हूँ तो स्वप्नोंका ताँता बँध जाता है, खाता हू तो खाना ही मुझे खाने लगता है, करूँ क्या? उद्धार का—छुटकारे का—कोई भी तो उपाय नहीं दीखता। कुछ भी तो नजर नहीं आता। क्या मरना पडेगा? अभीसे? इतनी जल्दी? अभी तो इच्छा नही है। पिताजी इस उम्रमें मेरे पिता भी नहीं हुए थे। ताऊजी अभी जीवित हैं। मैं अभी से क्यों? पर इस तरह तो निर्वाह होना कठिन है—मजबूरी है। अच्छा मरूँगा। मजबूरी है।

बार बार कहते–अरे बेटा ! गम्भीरता से रहो हर समय नहीं हँसा करते। माता ने नाम रक्खा था 'चटोरदास।' खट्टा मीठा–ताजा बासी जो सामने आता, सामने आने की देर थी खाने की नहीं। और नींद ? नींद का क्या पूछते हो ? उधार खाये बैठी रहती थी। खाते खाते सो जाता था–सुना आपने ? खाते खाते। मौज थी जो हृदय में उमड रही थी–बिजली थी जो नस नस में भर रही थी। हाय ! कहाँ गये वे दिन ? वे मेरे बचपन के दिन ? वे सुनहरे, प्यारे दुलारे दिन ? वे दगाबाज दिन ? किस गड्ढे में मुझे धकेल गये ? जवानी ? बुरा हो इस जवानी का, ईश्वर किसी को न दे यह जवानी। मेरा नाश बन कर छाती पर चढी है, और अब काल बन कर सिर पर मँडरा रही है। डायन न खाने देती है—न सोने देती है—न चैन से साँस लेने देती है। कुलच्छनी कुलटा अपनी ही ओर देखती है अपनी ही ओर। यह गत तो बन गई है, पर मरी नहीं, हैजा नहीं हुआ—इसे काल नहीं आया। मक्खियाँ तो भिनकने लगी

हैं—गलियारे में पड़ी रहती है। आँसू पीती है, और गम खाती है—फिर भी जवान बनी हुई है-उफ है—तुफ है!

कहाँ गई वह नींद? वह भूख? वह हँसी? वह मौज? बैठा रहता हू तो सिर में विचारोंकी रई चलती रहती है, लेटता हू तो खून की बूँदें नाचती हैं, सोता हूँ तो स्वप्नोंका ताँता बँध जाता है, खाता हू तो खाना ही मुझे खाने लगता है, करूँ क्या? उद्धार का—छुटकारे का—कोई भी तो उपाय नही दीखता। कुछ भी तो नजर नहीं आता। क्या मरना पड़ेगा? अभीसे? इतनी जल्दी? अभी तो इच्छा नहीं है। पिताजी इस उम्रमें मेरे पिता भी नहीं हुए थे। ताऊजी अभी जीवित हैं। मैं अभी से क्यों? पर इस तरह तो निर्वाह होना कठिन है—मजबूरी है। अच्छा मरूँगा। मजबूरी है।

पर मौत है-कहाँ? उसका दफ्तर भी कहीं ढूँढना होगा। उसके मुनीम गुमाश्ते चपरासी-इन्हें हक देना होगा? यह तो फायदेकी बात है! यह

देखो—गालोंकी हड्डीयाँ निकल आई हैं—माथे मे गढ़ा पड गया है। आँखें मगजमें धँस गई हैं—चेहरे पर स्याही दौड गई है-शायद वह आरही है—पर हाय! हाय! मैं तो मरने से पहले ही कुरूप हुआ जाता हूँ।

आशाने कितने झाँसे दिये थे, उत्साहने कितनी पीठ ठोकी थी, मनने कितनी हिम्मत बाँधी थी—सब सटक सीताराम हुए। सब खसक गये। वनीके सब साथी थे। अकेली जवानी कबतक चलेगी? वे हवाई किले मृगतृष्णा निकले। सब से वाजदावा देनेको तय्यार हूँ—पर निकलना कठिन है, गुनाह बेलज्जत! मरना खपना सब औरों के लिये—तिस पर कृतज्ञता का पता नही-जिक्र भी नहीं। मार डाला, अधमरा कर डाला, प्राण निकलें तो प्राण बचें! ठहरो-अभी मरनेकी इच्छा नहीं है। ना—अभी नहीं सोऊँगा। सोचने दो-हटो-सब भागो-कोई मेरे पास मत आओ-मेरा ध्यान मत भंग करो-मैं कुछ सोच रहा हूँ। हटाओ—इस पंखेको

हटाओ-वरना तमाचा मार दूँगा। मुझे कोई अच्छा नहीं लगता। स्त्री बीमार है तो भाड़में जाय। बाप मरता है तो मरे। बहन भीख माँगती है तो माँगे। मैंने क्या सबका ठेका ले रखा है? हटो हटो-मगज मत खाओ। मुझे एकान्त में छोड दो-मुझे सोचने दो- मुझे कुछ सोचने दो-जरूरी काम सोचना है। ओफ! सिर घूमता है। ओफ---ओफ!

देखो—गालोंकी हड्डीयाँ निकल आई हैं--माथे में गढ़ा पड गया है । आँखें मगजमें धँस गई हैं—चेहरे पर स्याही दौड गई है - शायद वह आरही है—पर हाय! हाय! मैं तो मरने से पहले ही कुरूप हुआ जाता हूँ ।

आशाने कितने झाँसे दिये थे, उत्साहने कितनी पीठ ठोकी थी, मनने कितनी हिम्मत बाँधी थी—सब सटक सीताराम हुए । सब खसक गये । बनीके सब साथी थे । अकेली जवानी कबतक चलेगी? वे हवाई किले मृगतृष्णा निकले । सब से बाजदावा देनेको तय्यार हूँ---पर निकलना कठिन है, गुनाह बेलज्जत! मरना भूपना सब औरों के लिये---तिस पर कृतज्ञता का पता नहीं- जिक्र भी नहीं । मार डाला, अधमरा कर डाला, प्राण निकलें तो प्राण बचें! ठहरो-अभी खानेकी इच्छा नहीं है । ना-- अभी नहीं सोऊँगा । सोचने दो-हटो--सब भागो-कोई मेरे पास मत आओ-मेरा ध्यान मत भग करो-मैं कुछ सोच रहा हूँ । हटाओ—इस वद्यको

हटाओ-वरना तमाचा मार दूँगा। मुझे कोई अच्छा नहीं लगता। स्त्री बीमार है तो भाड़में जाय। बाप मरता है तो मरे। बहन भीख माँगती है तो माँगे। मैंने क्या सबका ठेका ले रखा है? हटो हटो-मगज मत खाओ। मुझे एकान्त में छोड़ दो-मुझे सोचने दो- मुझे कुछ सोचने दो-जरूरी काम सोचना है। ओफ! सिर घूमता है। ओफ-- ओफ!

लोभ

बहुत करेगा मार लेगा, गाली दे लेगा, चार आदमियों में फजीहत करेगा। बस? इससे तो हद है। कोई फाँसी तो दे नहीं सकता? मैं तो कौड़ीका देवाल हूँ नहीं। इधर की धरती उधर हो जाय। सूरज साला धरती में उगने लगे-- मलय हो जाय-पर इनमें तो दाँत गड़ने दूँगा नहीं। अजी "जान है तो जहान है और जर है तो दुनिया घर है।" कुछ नहीं तो माल गड़ा ही

नहीं है। अच्छों अच्छोंके वतन छूट जाते हैं। अच्छों अच्छोंको परदेश रहना पड़ता है। इस में पशोपेश क्या? काम बनाया और सटक सीताराम। कहा भी है-"देशचोरी और परदेश भीख।" कौन पूँछता है? सब इसीको पूजा करते हैं। इसीका सारा नाता है-इस की गर्मी ही मजेकी गर्मी है। सच कहा है किसीने-"धरा पाताल और दिपे कपाल।" इसीकी इज्जत, इसीका बल, इसी का सारा कारबार है। यही न रहेगा तो शरीर क्या काम आवेगा? कौन खरा है? मुँह बनाकर सामने आवे। सब को जानता हूँ। कमा कर कौन धनी बना है? राम कहो। "घर आये नाग न पूजिये बाँबई पूजन जाय।" मैं ऐसा अहमक नहीं हूँ। भगवान ने घर बैठे लक्ष्मी भेजी है---तो मैं क्या ढकेल दूँ? वाह! यह खूब कहो। सब के यहाँ इसी तरह चुपचाप आती है। गा बजा कर किसके गई है? लोग तो खून तक करते हैं! हाँ! खून इसीके लिये। मैंने किसी का गला तो नहीं काटा? जो होगा देखा

तुम लखपती थे ? वे तुम्हारे लाख रुपये सुरक्षित लोहेके सन्दूकों में वन्द रखे हैं ? और मैं ? हाड माँस का आदमी, जिसकी छाती में हृदय—जीवित हृदय—धरोहर धरा है—इस तरह यातना—अपमान-कष्ट और भयकरता में झकोरे ले रहा हूँ ? मित्रता की ऐसी तैसी, मित्रता के बाप की ऐसी तैसी। निष्ठुर पाखण्डी सोने के डले! बिना तपाये और कुचले तुझमे नर्मी आना ही असभव था!!!

तुम! तुम मेरे भक्त थे, क्या यह सच है ? भक्ति किसे कहते हैं मालूम है ? चुप रहो—बको मत, ज्ञान मत बघारो। मैं ही मूर्ख हूँ। मेरे उपदेशों को तुमने मनोहर कहानी समझा होगा! ठीक, अब समझा, तुम मनोरजन ही के लिये मेरे पास आते थे! धीरे धीरे अब सब दीख पडता है। जब मैं आवेश में आकर अपने आविष्कृत सिद्धान्त जोर शोर से तुम्हारे सामने बोलता था—तब तुम हँसते थे। उस तुम्हारी हँसी का तब मतलब नही समझा था—अब समझा। उफ—ऐसे भयङ्कर गम्भीर

सिद्धान्तों को तुम मनोरंजन समझ कर सुनते थे ठीक है। पिशाचों को श्मशान मे नृत्य ही की सूझती है। प्रकृति कहाँ जायगी ! पर मुझे मनुष्य की परख नहीं हुई। मैं पूरा वज्रमूर्ख हूँ। मैंने भैंस के आगे बीन बजा कर सुनाई थी--हाय करम ! हाय तकदीर !!!

कुछ भी समझ नहीं पडता। अचम्भा है। मनुष्य रूप पाकर मनुष्य हृदय से शून्य कैसे जाते हैं ! अमीरों के हृदय कहाँ हैं ! सारे अमीर मर कर भेडिये, साँप बिच्छू, बनेंगे ! ये मनुष्य जन्ममें अपनी बुद्धि से जिस रूप का अभ्यास कर रहे हैं, वही रूप इन्हें मिलेगा ! वाह ! बडा अच्छा तुम्हारा भाग्य है। मैंने सुना है – पुराने खजानों में साँपों का का पहरा होता है। तुम सब धनी लोग वहाँ साँप हो। फर्क इतना है तुम सब बनने वाले हो और वे बन गये हैं--वे तुमसे सिर्फ एक जन्म आगे हैं। उनके तुम्हारे बीच में केवल एक मृत्यु का पुल है। उसे पार किया कि बस असली रूप पा गये।

तुम लखपती थे ? वे तुम्हारे लाख रुपये सुरक्षित लोहेके सन्दूकों में बन्द रखे हैं ? और मैं ? हाड माँस का आदमी, जिसकी छाती में हृदय—जीवित हृदय—धरोहर धरा है—इस तरह यातना—अपमान-कष्ट और भयकरता में झकोरे ले रहा हूँ ? मित्रता की ऐसी तैसी, मित्रता के बाप की ऐसी तैसी! निष्ठुर पाखण्डी सोने के डले! बिना तपाये और कुचले तुझमें नर्मी आना ही असंभव था!!!

तुम! तुम मेरे भक्त थे, क्या यह सच है ? भक्ति किसे कहते हैं मालूम है ? चुप रहो—बको मत, ज्ञान मत बघारो। मैं ही मूर्ख हूँ। मेरे उपदेशों को तुमने मनोहर कहानी समझा होगा! ठीक, अब समझा, तुम मनोरंजन ही के लिये मेरे पास आते थे! धीरे धीरे अब सब दीख पडता है। जब मैं आवेश में आकर अपने आविष्कृत सिद्धान्त जोर शोर से तुम्हारे सामने बोलता था—तब तुम हँसते थे। उस तुम्हारी हंसी का तब मतलब नहीं समझा था—अब समझा। उफ—ऐसे भयङ्कर गम्भीर

सिद्धान्तों को तुम मनोरञ्जन समझ कर सुनते थे ठीक है। पिशाचों को श्मशान में नृत्य ही की सूझती है। प्रकृति कहाँ जायगी! पर मुझे मनुष्य की परख नहीं हुई। मैं पूरा वज्रमूख हूँ। मैंने भैंस के आगे बीन बजा कर सुनाई थी--हाय करम! हाय तकदीर!!!

कुछ भी समझ नही पड़ता। अचम्भा है। मनुष्य रूप पाकर मनुष्य हृदय से शून्य कैसे जाते हैं! अमीरों के हृदय कहाँ हैं! सारे अमीर मर कर भेड़िये, साँप बिच्छू, बनेंगे! ये मनुष्य जन्ममे अपनी बुद्धि से जिस रूप का अभ्यास कर रहे हैं, वही रूप इन्हें मिलेगा! वाह! बडा अच्छा तुम्हारा भविष्य है। मैंने सुना है--पुराने खज़ानों में साँपों का का पहरा होता है। तुम सब धनी लोग वही साँप हो। फर्क इतना है तुम सब बनने वाले हो और वे बन गये हैं--वे तुमसे सिर्फ एक जन्म आगे हैं। उनके तुम्हारे बीच में केवल एक मृत्यु का पुल है। उसे पार किया कि बस असली रूप पा गये।

हे सफेद पगडी और सफेद अँगरखे वालों!
हे टमटम मोटरगाडियों में गिचडनेवालों! हे अपाहिजों! अभागों! रोगियों! निपूतों! हीजडो! तुम पर मुझे दया आती है। किन्तु तुम्हारा भविष्य देख कर मुझे सन्तोष होता है– सुख मिलता है।

मेरा बच्चा मर गया। उसे दूध नहीं मिला। मेरी स्त्री के स्तनों में जितना दूध था–वह सब वह पिला चुकी। जब निबट गया, तब लाचार हो गई। बाजार से मिला नहीं। पैसा न था। बिना पैसे बाजारमें कुछ नहीं मिलता। पहले, जब ससार में बाजार नहीं थे, घर थे, तब सबको सब-कुछ मिलता था। चीजके होते कोई तरसता न था। अब खुल गये बाजार और बाजार में उन्हींको मिलता है जिनका बाजार है। और बाजार है पैसे का। पैसे से ही बाजार है। बच्चा कई दिन सूखे मुँह सूखे स्तन चूँसकर सिसकता रहा। अन्त में ठण्डा पड गया। मेरे प्यारे मित्र तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है, वही

[illegible] बच्चा था। अब मैं किसे देखूं ! अच्छा [illegible] का [illegible] बच्चा कितना मोटा होगया है। [illegible] ! साँप के बच्चे को तो देखो कैसा [illegible] है। तुमने इसे इतना क्यों चराया है? इतना [illegible] यह क्या करेगा? इसे कितने दिन इस योनि में रखने का इरादा है ! यह अपनी काँचली कब बदलेगा?

मेरे हुजूर पूछते हो? ठीक है, वाजबी है। बहुत दिनसे मिली नहीं थी। अच्छा सुनो। भयानक युद्ध में फँसा हुआ हूँ। इसी युद्धमें मेरे दो बच्चे दब चुके हैं—एक भूखा रहकर और दूसरा रोगी रहकर। मैं भी रोगी होगया हूँ। अब खाया नहीं जाता। चिन्ता ने जठराग्नि को बुझा दिया है। सिर भनभनाता रहता है। नींद मर गई है। उसकी लाश को तुम्हारे बच्चे चुरा ले गये हैं। पर खैर, मुझे सोने की फुर्सत भी नहीं है। हौंस भी नहीं है। युद्ध कर रहा हूँ—कंगालीसे युद्ध कर रहा हूँ दरिद्रता भीषण दांत कटकटा

कर असख्य शस्त्र लिये झपट रही है। हाँ हाँ, अब तक परास्त किया है। यह युद्धका मध्यभाग आ गया है। ठहरो दो हाथ मे साफ है। अभी जीत कर आता हू। सबर करो—सबर। सबर। तब तक तुम अपने बच्चे को मलाई खिलाओ। अजीर्ण बढाओ। बढाओ। और मेरा युद्ध-कौशल, वीरता, यदि देखनी हो, तो आओ मैदान मे—देखो, लडने को नहीं, देखने को। साँपों का लडने का काम नही है। वे तो अँधेरे मे—जहाँ पैर पडा बस वही—काट लेने के मतलब के हैं। अच्छा जाने दो। मैं फतह करके आता हूँ। देखो, जिस धनको, जिस सोनेके ढेर को तुम छाती मे छिपाये उसकी आराधना कर रहे हो, उसे मा, बाप, भैया, लुगाई, चाची, ताई, नानी, नाना समझ रहे हो, उसी पर—हाँ उसी पर—चाहे वह तुम्हारा कुछ हो क्यों न हो—बिना किसी तरह का लिहाज किये उसी पर—उसी ढेर की छाती पर पैर धरके ताण्डव नृत्य करूँगा। अपनी स्त्री की हड्डियों की ठठरियों की मैने 'भोगली' बनाई है और अपने

बच्चे की कच्ची खाल से उसे मँढ लिया है। यह है मेरा डमरू। यह बजेगा डम डमाडम। दिग्दिगन्त गूँज उठेंगे। फिर मेरा थिरक थिरक कर ताण्डव नृत्य होगा। हा! हा! हा! ताण्डव नृत्य होगा। फिर, नाच कर, उसी ढेर को ठुकरा कर, जूतों में कुचल कर फेंक दूगा। उस पर थूक दूगा। उस पर पेशाब कर दूगा। तब जी चाहे तो ले जाना। लूटकर ले जाना, आँख बचा कर ले जाना। धन है, यह लात मारने से, थूकने से, मूतने से, अपवित्र-अपमानित तो हो नहीं जायगा! उसकी रबडी, मिठाई, फल लाकर बच्चे को खिलाना। मोटा हो जायगा, रंगत चढ जायगी। और तुम्हारी स्त्री? हा! हा! हा! उस धनका घाघरा उसके लिये परम कल्याण-कारक होगा। यही हजार रुपया—उसमें से दान धर्म मे लगा देना। बस, स्वर्गमें तुम्हारे बाप तुम्हारे लिये द्वार खोले खडे रहेंगे।

मगर ठहरो। खुशी से उछल न पडना। यह लूट का माल देर से मिलेगा। अभी युद्ध भी विजय नहीं

हुआ है। सम्भव है, इसी युद्ध में मेरी जवानी मारी जाय। उसी के सिर तो इस युद्ध का सेहरा है। वही तो इस युद्ध की सेनापति है। उसके चारों ओर गोली बरस रही हैं। यदि वह मारी गई और तब विजय हुई तो उसके अनन्तर ताण्डव नृत्य करने में भी कुछ समय लगेगा। ओढ़ने को रक्तभरी ताजी खाल चाहियेगी और वह भी हाथी की! पर मैं वह किसी काले रंग के भारी सेठ की निकालूगा, रुपया देकर मोल ले लूँगा। मेरा सफेद केश, दन्तहीन मुख, उस पर सज जायगा। एकबार नाच कर उसे मैं ठोकर मार दूँगा। फिर जिसके भाग्य में हो, वह उसे ले जाय।

मेरी यह विजय-वीरता की कहानी जो सुनेगा उसे साँप का जहर नहीं चढ़ेगा। मेरी शपथ देने से साँप का विष उतर जायगा। जो साँप मनुष्य का स्वाँग धरे छल से धन पर बठे हैं और जो धन निकम्मा पड़ा पड़ा जंग खा रहा है और उनके डर से जो लोग, बालक, स्त्रियाँ शरीर और लज्जा की रक्षा तक करने को तरसते हैं, पर उसमें से नहीं ले सकतीं, मेरे नाम

की दुहाई देते हैं, वे सब कटके साँप बन जावेंगे। और क्षण भर में नाच उठेंगे। इस धन से भूखे अन्न लेंगे, बच्चे दूध लेंगे, गौएँ औषध लेंगी, प्यासे जल लेंगे और दुखी सुख लेंगे। इतने पर जो शेष बचेगा वह मेरी दिवगत आत्मा का होगा। विद्वान् लोग मेरी आत्मा की शान्ति के लिये प्रतिवर्ष भाद्रपद वदी चौथ को उस धन पर एक, दो, तीन, चार, दस, बीस, पचास, सौ, हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब असंख्य जूते लगावेंगे। अहाहा! कैसा होगा मेरा वह ताण्डव नृत्य! यह युद्ध का पंचम कृत्य पड़ता है। हूं—हूं—वह मारा!! हू! हूं!

निराशा ।

हाथ पैर मारना और खून सुखाना व्यर्थ है। न इससे कुछ हुआ, न होगा। जब मैं ऐसे चेहरों का ध्यान करता हूं जिन्हें धन में धन, रूप में रूप, प्यार मे प्यार, सुख मे सुख, विद्या में विद्या और मान में मान मिला हुआ है तब मुझे फुर्सत भी नहीं मिलती। और जब मैं उन मुखों का ध्यान करता हूं जो कहीं कुछ न पाकर झुक गये हैं तो तबियत ऊब जाती है। किसे देखू? अपने देखने से फुर्सत मिले तब न?

दुनिया ऐसी ही जगह है। यहाँ समतल स्थान बहुत कम हैं—और हैं ही नहीं। विशेष कर मुझे तो मौके मिले नहीं हैं—कहीं होंगे। मैं जहाँ खड़ा हूँ, वह एक बड़ी ही विकट पहाड़ी है। मेरे पैर जहाँ टिक रहे हैं, वह बहुत ही सकड़ी पगडण्डी है। उसके एक तरफ अनन्त पाताल है और दूसरी तरफ ढाल गगनभेदी चट्टान है। दोनों ही—चट्टान भी और पाताल भी—मेरे ही जैसे जीवों से भर रहे हैं। मुझमें और उनमें अन्तर इतना ही है कि नीचे वाले नीचे हैं और ऊपर वाले ऊँचे हैं। पर नीचे वाले ऊपर न आना चाहें और ऊपर वाले नीचे न आना चाहें तो यह अन्तर कुछ भी नहीं रहता। यह समझना कठिन है कि सुखी कौन है। पर मेरी इच्छा ऊपर ही जाने की थी, इससे मैं समझता हूँ ऊपर जाने में सुख है। ऊपर जा पहुंचने में क्या है? सुख है भी या नहीं इसकी बाबत कुछ भी नहीं कह सकता। पर शायद सुख नहीं है। इसके प्रमाण में मैं यदि कहता हूँ कि मैं भी कुछ से ऊँचा हूँ, पर मुझे सुख कहाँ है? जो मुझ

तक आना चाहते हैं, वे मुझ तक पहुचने में भले ही सुख समझें, पर मुझे सुखी समझना उनकी भूल है। फिर भी वहाँ पहुचने मे भी सुख समझा था, यही बडी बात थी। सुखकी एक राह तो मिल गई थी। यही क्या कुछ कम था। पर अब तो यहीं, इसी अध-बीच में, इसी तग पगडडी में डेरा डालना पडा। अब बाकी समय का कोई समय-विभाग नही है। काम सब खतम होगया हैं-नही नहीं उससे मैने इस्तीफा दे दिया है। यह देखो, ऊपर वाले ऊपर जा रहे हैं और नीचे वाले ऊपर आ रहे हैं। कहाँ? काम तो कहीं भी खतम नही हुआ है? तब सबसे उपराम होकर, सबको काम करता देखकर कैसे नीद आवेगी? विश्रान्ति कहाँ मिलेगी? दिन कैसे कटेंगे? मरने के तो अभी बहुत दिन हैं।

हाँ, पर अब गोडे नहीं उठते। कमर टूट गई है, दिल बैठ गया है, रक्त ठण्डा पड गया है। इतना करके कुछ न पाया, आगे क्या पावेंगे? कुछ नही। सब मृग तृष्णा है—मृगतृष्णा। इस ऊँचाई का कुछ अन्त तो

है नहीं, ठेठ तक यही पगडडी गई है। यही तग पगडडी, जब तक चोटी पर न पहुचे और दस हाथ चढने पर भी यही पगडडी, यही एक तरफ ऊँचा पहाड, यही एक तरफ अतल पाताल—सब वही है। और चोटी? चोटी का नाम न लो, वहाँ नही पहुचा जायगा। हर्गिज नही पहुचा जायगा। आ मन! सन्तोष से यही बैठ।

आशा

आशा! आशा! अरी भलीमानस। जरा ठहर तो सही, सुन तो सही, कहाँ खींचे लिये जा रही है? इतनी तेजी से, इतने जोर से? आखिर सुनूं तो कि पडाव कितनी दूर है? मजिल कहाँ है? और छोर किधर है? कही कुछ भी तो नही दीखता! क्या अन्धेर है! छोड मुझे छोड। इस उच्चाकाक्षा से मैं बाज आया। पडा रहने—मरने दे, अब और दौडा नहीं जाता। ना-ना-अब दम नही रहा। यह देखो

यह हड्डी टूट गई पैर चूर चूर हो गये, साँस रुक गया, दम फूल गया। क्या मार ही डालेगी सत्याना शिनी? किस सब्ज बाग का झाँसा दिया था? किस मृगतृष्णा में ला डाला मायाविनी? छोड छोड, मैं तो यहीं मरा जाता हू—यहीं समाप्त हो रहा हू। मैंने छोडा, दावादावा देता हू—मेरी जान छोड। मैं यहीं पडा रहूगा। भूख और प्यास सब मजूर है। हाय! वह कैसी कुघडी थी जब मैं प्यारी शान्ति का हाथ छोड, उससे पल्ला छुडा, उसे धक्का मार, अन्धे की तरह—नहीं नहीं पागल की तरह - तेरे पीछे भागा था? कैसी भग खाली थी, कैसी कुमत गँवाई थी? कहां है मेरी शान्ति? कुछ भी तो पता नहीं है--जीती भी है या मर गई!

क्या करता। तेरी मोह भरी चितवन, उन्मादक मुस्कुराहट, और दिल को लोट पोट करने वाली चपलता ने मुझे मार डाला। मुझ पर, मेरे दिल पर, मेरी शान्ति पर, इन सब ने डाका डाला। शान्ति छुटी, सुख लुटा, घर बार छुटा, आराम छुटा, अब भी दौड

बन्द नहीं ? अब भी मंजिल पूरी नहीं ? तूँने कहा था, वहाँ एक करोड स्वर्गों का निचोडा हुआ रस सड़कों पर छिडका जाता है। तूँने कहा था, शान्तियों का वहाँ ढलाई का कारखाना खुला हुआ है। तूँने कहा था, सुखके सात समुद्र भरे पडे है। तूँने कहा था, रूप का वहाँ अतर खींचा रखा है। तेरे इतने प्रलोभनों में यदि मैं भटक गया तो भगवान मेरा अपराध क्षमा करें। यहाँ तो मार्ग ही मार्ग है--मंज़िल का कहीं ठिकाना नहीं है। क्या जाने कहीं है भी या नहीं।

प्यास के मारे कण्ठ चिपक गया है। जीभ तालू से सट गई है। घर में कूए का ठण्डा जल था, उसे छोड अमृत के लोभ में निकला, तो प्यास पल्ले पडी। घर मे पेट भर रोटियाँ तो थीं—जैसी भी थीं--मोहन भोग के लोभ में गधे की तरह वे छोड दीं, अब भूख के मारे आँखें निकल रही हैं। चटाई का बिछौना क्या बुरा था ? सिंहासन कहाँ है ? यहाँ चलते चलते पैर टूट गये हैं। वह बीहड मैदान, रेगिस्तान, नदीनद,

रहा हूँ। जन्म समाप्त हो चला। सारा समय मार्ग में ही बीत गया--फिर भी कहती है--'थोड़ा और।' लौटने दे। पर लौटने का समय कहाँ है? घर बहुत दूर है। उसकी राह जवानी से बुढ़ापे तक की है। अब बूढ़ा तो हो गया--जवानी अब कहाँ से आवेगी? अब लौटना व्यर्थ है। असम्भव है। तब? तब क्या यहीं मरना होगा? यहीं मार्ग में, काँटे और पत्थरों से भरी धरती में हिंसक जन्तुओं से भरे जगल में? हे भगवान्, जब से बुढ़ापे तक, दौड़ने--मरने--... --भागने यही--यही--यही फल मिला?

फिर वही, "थोड़ी दूर ... कितनी है? सच तो बता, ... तो वापस लौटने का समय ही नहीं है भी तो नहीं दे सकता। तेरी आँखें ... आँखों के प्रकाश में और कब तक दम नहीं है। मैं हाथ जोड़ूँ, हा हा दे। मरने को छोड़ दे। मुझे न जीने की।



क्या कहा? मंजिल आगई? कहाँ? फिर? देखूँ? इतना क्यों हँसती है। मुझे हँसना अच्छा नहीं लगता। ठहर। क्या सचमुच मंजिल आगई? यह जो सामने चमक रहा है—वही क्या हमारा गन्तव्य स्थान है? पर वह तो अभी दूर है। वहाँ तक पहुँचने की ताब कहाँ है? और पहुंच कर वह भोग भोगने की शक्ति भी कहाँ रह गई? रहने दे। अब एक पग भी न चलूगा। चला भी न जायगा। इसका कोई उपयोग नहीं। पहुँचना ही कठिन है और पहुंच कर उसका उपभोग करना तो और भी कठिन—असम्भव है। भोग का समय, आयु, शक्ति, सब इस मार्ग में समाप्त हो गई। अब क्या उस भोग को लालच की दृष्टि से-तरसते मन से-देखने को वहाँ जाऊँ? यह तो और भी कटु होगा। रहने दे, अब वहाँ जाने का कुछ आकर्षण नहीं रहा। तुम अक्षययौवना हो, किसी अक्षययौवन को पकड़ो। और मैं तो यहीं इसी मार्ग में मरा! हे भगवान! आज शान्ति मिलती! आशा! आशा! तुम जाओ—जाओ! हाय! मैं मरा! ऍ! ऑ! क्या कहा?

यहाँ सब थकान व्याधि मिट जायगी ? शान्ति भी मिल जायगी ? नहीं ? ऐसा ! अच्छा भागवान ! चल। अच्छा चल। पर कितनी दूर है ? है तो सामने ही न ? अच्छा और चार पग सही—चल—चल।

है? अरे! निकृष्ट! नीच! अपदार्थ! मर, मुझे छोड। हवा का रुख छोड दे। तुझे छूकर जो हवा आ रही है उसमें साँस लेने से मेरा दम घुटता है।

तेरा दिल पुरानी हड्डी से भी अधिक सूखा है और खून मुर्दे से भी अधिक ठण्डा है। इस तरह मरे बैल की तरह क्यों आँखें निकालता है? क्या मुझे खायगा? मेरा खून पीयेगा? वह तो तेरे सर्वनाश की चिन्ता में सूख गया! उसमें क्या स्वाद है?

जा पापी! अब मैं मरा जाता हू, मरे को खा जाना। हल्क से उगलन निकाल कर खाने वाले श्वान! मुर्दार मौजी गीदड़! जरा ठहर जा।

जा सुरा के श्मशान पर मौज कर, प्रेम की लाश का रस पी। तृप्त हो जायगा। इस लोक और परलोक का सब कुछ तुझे मिल जायगा। चल भाग यहाँ से। दूर हो—दुर—दुर—दुर। हटाओ, हटाओ, दूर ले जाओ। दुनियाँ की आँखों से दूर ले जाओ। धरती आस्मान से दूर ले जाओ। जो इसे देखेगा, अन्धा हो जायगा। जो इसे छुएगा कोढ़ी हो ज—— —े इसके पास से

की तरह वह छाती पर धरा है। घृणित कुत्ता, खून पीने वाला पिस्सू, डरपोक खटमल। हट मर—मैंने तुझे छोड़ा, भगवान के नाम पर छोड़ा। लेकर रह, उसे लेकर रह पापिष्ठ! हाय! उसी की याद आती है। उस याद मे सड़ी बास आती है। दिमाग फटा जाता है। सड़ास की मूर्ति, पाप की प्रतिमा, विश्वास-घात की स्याही, विष्ठा के कीड़े, ये सब तेरे रूप हैं। धूर्त! बुजदिल! निकम्मे!!

मेरी सरला बधू गाँव की गँवारी थी। सीधी साधी। आज वह कहाँ है? वह घास का सफेद फूल मसल कर किस मोरी में डाल दिया है? कितनी चाह से मैं उसे लाया था। समझा था, वह मेरी है। उसने भी कहा था-मेरी है। तू कौन था? उच्छिष्ट भोजी कौवे? काने! काले! तू कहाँ से देखता था? देखते देखते ही ले भागा! तुझे मार डालू, यह सम्भव है, पर तेरे खून के हाथ कहाँ धोऊँगा? यह घृणित खून? कोढ़ के कोड़ों से गिजमिजाता खून? ना, मैं तुझे नहीं मारूँगा, तुझे नहीं छुऊंगा। सामने [illegible] में क्यों गढ़ा

भय ।

हैं ! यह खडका कैसा ! कौन ? इसे भी खोदकर यहीं गाड दूगा। ओह ? कुछ नहीं। मैं यों ही डर गया—हवा से पत्ता खडक गया था। अब यह क्या ? कोई है ? नही, कोई नही। यहाँ कौन आयगा ? इस बीहड वन में ? इस भयकर जगल में ? इस सन्नाटे की रात में ! इस चिल्ले की सर्दी में । लोहू जम गया है होठ सीं गये हैं, जीभ तालू से सट गई है। कैसा अँधेर है ! बापरे ! यह क्या चमकता है ? हो ! किसने छुआ ?

हो कर निकलेगा सड जायगा। जिसे इसकी हवा लगेगी, कीड़ा बन जायगा। इसे गाड दो, धरता में गाट दो, या मिट्टी का तेल डालकर दीवासलाई दिखा दो। नहीं तो नदी में फेंक दो। देखना, चीमटे से पकडना! दाँत तोड देना, आँख फोड देना, पैर काट डालना। सावधान रहना। ओफ! आँख ओझल हुआ। झगडा कटा। मगर भीतर है। अभी है? वही है। हे भगवान्! हे नाथ! इसे भुला दो, मुझे घुला लो। यहाँ यह नहीं छोड़ेगा। हाय! देखो -किस तरह घूरता है! मैं मरा, हाय! हाय! छूना मत—छूना मत! ओफ!!!

अरे! क्या वह उठता है? तू कौन? भूत कि पिशाच? तुझे भी मार डालूंगा। अब यह पल्ला किसने खींचा? पीछे कोई है क्या? पीछे फिर कर देखूं? कोई मार न दे! मुझे क्या कोई पकड़ लेगा? सबूत? सबूत क्या है! फांसी? मुझे? किस सबूत से? गवाह कौन है? यही बोलेगा क्या? मुर्दा! यह? ठहरो इसे दुबारा मारे देता हूं। यह क्या! पसीना आ रहा है! भागूं? पैरों में पारा चढ़ गया? भागू? और यह? यों ही रहेगा? पड़ा रहे? कौन देखता है? कौन जानता है? कौन कहता है? सबूत क्या है? यह कौन हँसा? इतनो ज़ोर से? कौन? कोई नहीं। भागू। अच्छा भागता हूं। पड़ा रहने दो, सबूत क्या है। इसी के कपड़ों से हाथ पोंछ दूं। पानी है क्या। वह नहीं है! अच्छा भागता हूं! ऊँ पी-पी-पी-छे कौन—कौन है! यह गिरा! बचाओ—बचाओ! -दौड़ो—दौड़ो! फाँसी—न-न-नहीं—मैं नहीं। सबूत! नहीं मैं नहीं—बापरे! फांसी! फ-फ-फ-फांसी! मरा! मरा-म-मरा—हाय!!!

यह ठण्डा हाथ किसका है? भागू? किधर? पगडंडी किधर है? अब वह कौन बोला? ओह! कोई पक्षी है। मैं भी कैसा मूर्ख हू—अपने ही पद शब्द से चौंकता हू, अपनी ही छाया से डरता हू, अपने ही स्पर्श से काँपता हू। काम जल्दी खतम करना चाहिये। अच्छा अब खोदू। कुदाल कितना भारी है। जमीन लोहे सी हो रही है। जरा सी चोट में कितना शब्द होता है। यहीं यह चिल्ला न उठे। जब मर ही गया है तब क्या चिल्लायगा? उस वक्त ही नहीं चिल्लाने दिया—एक शब्द तो निकलने दिया ही नहीं। कैसा छटपटाया था, कितने हाथ पैर मारे थे, कितना जोर लगाया था, पर अन्त में ठण्डा हो गया। आँखें बाहर निकल पडी थीं, जीभ हल्क से लटक गई थी, गले की नसें फूल गईं थीं, दो मिनिट में दम उलट दिया। ना—ना। यह बात याद न करूँगा। कोई, सुन न ले। गला क्यों कस गया? दम घुटता है। ठहरो, कुर्ते को फाड़ डालू। हाथ क्या गीले हैं? दें? खून! खून! चुप! चिल्लाता क्यों हू? अन्धेरे में कौन देखता है! धो लेने पर साफ!

अरे! क्या यह उठता है? तू कौन? भूत कि पिशाच? तुझे भी मार डालूंगा। अब यह पल्ला किसने खींचा? पीछे कोई है क्या? पीछे फिर कर देखूं? कोई मार न दे! मुझे क्या कोई पकड़ लेगा? सबूत? सबूत क्या है! फांसी? मुझे? किस सबूत से? गवाह कौन है? यही बोलेगा क्या? मुर्दा! यह? ठहरो इसे दुबारा मारे देता हूं। यह क्या! पसीना आ रहा है! भागूं? पैरों में पारा चढ़ गया? भागूं? और यह? यों ही रहेगा? पड़ा रहे? कौन देखता है? कौन जानता है? कौन कहता है? सबूत क्या है? यह कौन हँसा? इतनी जोर से? कौन? कोई नहीं। भागूं। अच्छा भागता हूं। पड़ा रहने दो, सबूत क्या है। इसी के कपड़ों से हाथ पोंछ दूं। पानी है क्या। वह नहीं है! अच्छा भागता हूं! ऐं पा-पो-पी-छे कौन—कौन है! यह गिरा! बचाओ—बचाओ! -दौड़ो—दौड़ो! फांसी—न-न-नहीं—मैं नहीं। सबूत! नहीं मैं नहीं—बापरे! फांसी! फ-फ-फ-फांसी! मरा! मरा-म-मरा—हाय!!!

गर्व

वह? उसकी यह मजाल! अच्छी बात है देख लूँगा! मेंढकी को जुकाम हुआ? मेरी बराबरी करेगा? बराबरी कहाँ? आगे बढ़ेगा? वह भुनगा? कल तक जो मेरे द्वार पर जूतियाँ चटकाता फिरता था! जिसकी माके हाथों मे चक्की पीसते पीसते आँटे पड़ गये हैं। आज वह यों चलेगा? अकड़ कर, इस ठाठ मे? कुचल डालूँगा। दूध मे मक्खी की तरह निकाल फेंकूँगा। चाहे अपने हिमायतियों को लेकर आवे, एक एकसे सुलझ लूँगा।

मुझे नहीं जानता। ऐसे ऐसे अड़ियों में अटके फिरते हैं। बड़े बड़े 'तीस मारखाँ' देखे हैं। सब साले इनकी हाँकते थे, पर अन्त में सबका सिर नीचा हुआ। यहीं मैं सबसे ऊँचा हुआ। इन्हीं हाथों से यह सम्मान, यह धाक, यह जलाल पैदा किया। किसी को क्या समझता हूँ! लखपती होंगे तो अपने घर के। दिखा दूँगा। यहीं नाक न गड़े तो नाम नहीं, 'भंगी का पिशाब' कह देना!

लड़ लो, चाहे जिस तरह लड़ लो। धन में, बल में, विद्या में, खर्च में। चार कौड़ी क्या हुई सालों के सींग निकल आये। धरती पर पैर नहीं टेकते। कुछ परवा नहीं। ईंट से ईंट बजा दूँगा। या मैं नहीं या वह नहीं। मैं हूँ मैं! किसकी मजाल है! किसकी माने धोंसा खाया है, किसकी छाती पर बाल हैं? पिशाब में मूछ मुड़वा लूँगा। डाढ़ी का बाल बाल उखड़वा लूँगा। वह मैं हूँ! मेरा नाम क्या साले जानते नहीं हैं! किसने मुझे अब तक नीचा दिखाया! जो उठा वहीं खटमल की तरह मसल दिया! दम क्या है! किस बूते पर उछलते हैं।

साले पतगे हैं-पतगे। वे मौत मरते हैं। किसी ने सच कहा है—"चिउटी के जब पर भये, मौत गई नियराय।" यहाँ तो मेरी चलेगी—मेरी। आया समझ के बीच में? मेरी चलेगी। मेरी ही मूछें ऊँची उठेंगी। यह सारी सम्पदा मैंने अपने भुजबल से पैदा की है। कितनों को रिजक देता हू। कितने मेरा टुकडा खाते हैं। कितने मेरे हाथ से पलते हैं। किसी को तौफीक है? ऐसा कोई है? बादशाहों की पूछ में क्या सुर्खाब के पर लगे रहते हैं? मैं किस बात में कम हू? जहाँ जाता हू लोग झुक कर सलाम करते हैं और जाने की जरूरत भी नहीं पडती, लोग यही सलाम करने आते हैं। मेला लगा रहता है। मैं किस साले के दरवाजे जाऊँगा? इन्हीं को रोटियाँ लगी हैं, सो जहर के सारे दाँत तोडे देता हू। देखो मेरे हतकडे।

लोग कहते हैं भगवान से डर। बेवकूफ इसी डर ही डर मे भुम्पड बने बैठे हैं। छोटे बडे सब तरह के काम किये, आज तक तो भगवान् ने हाथ पकडा नहीं। तेरी भक्ति की दुम में रस्सा। वे आते हैं पडित जी,

पूरे बेगैरत, बिना पूछे सौ सौ असीसें देते हैं। चेहरा ऐसा जैसे अभी रो पड़ेंगे। शरीर ऐसा जैसे कब्र से उठ कर आये हैं। कौड़ी को दाँत से उठाते हैं। ये है भगवान के भगत ! उल्लू के पट्ठे, हरामी, खाते हैं मेरा, कहते हैं भगवान का। अच्छा सब मौकूफ। इन निकम्मों को आज से कौड़ी न दी जाय। भगवान् से माँगें ! उनका भगवान् देखें कैसे खिलाता है। कहाँ भगवान न भगवान् की दुम। पद्दू का पद्मसिंह बना रखा है ! हम हैं भगवान ! यह रुपया है हमारा सुदर्शनचक्र। यह दस्तावेज है हमारी गदा। और यह हमारी कृपा है पद्म और आशा है शंख। हमे भजो, हमे झुको, हम देंगे। हम देंगे—हम—हम—हम। इधर देखो हम ! हम ! हम !

,

साले पतंगे हैं-पतंगे। वे मौत मरते हैं। किसी ने सच कहा है—"चिउटी के जब पर भये, मौत गई नियराय।" यहाँ तो मेरी चलेगी—मेरी। आया समझ के बीच में? मेरी चलेगी। मेरी ही मूछें ऊँची उठेंगी। यह सारी सम्पदा मैंने अपने भुजबल से पैदा की है। कितनों को रिजक देता हू। कितने मेरा टुकडा खाते हैं। कितने मेरे हाथ से पलते हैं। किसी की तौफीक है? ऐसा कोई है? बादशाहों की पूछ मे यया खुर्खाब के पर लगे रहते हैं? मैं किस बात में कम हू? जहाँ जाता हू लोग झुक कर सलाम करते हैं और जाने की जरूरत भी नही पडती, लोग यही सलाम करने आते हैं। मेला लगा रहता है। मैं किस साले के दरवाजे जाऊँगा? इन्हीं की रोटियाँ लगी है, सो जहर के सारे दाँत तोडे देता हू। देखो मेरे हतकडे।

लोग कहते हैं भगवान से डर। बेवकूफ इसी डर ही डर मे भुक्खड बने बैठे हैं! छोटे बडे सब तरह के काम किये, आज तक तो भगवान ने हाथ पकडा नही! तेरी भक्ति की दुम में रस्सा। वे आते हैं पंडित जी,

पूरे बेगैरत, बिना पूछे सौ सौ असीसें देते है। चेहरा ऐसा जैसे अभी रो पडेंगे। शरीर ऐसा जैसे कब्र से उठ कर आये हैं। कौडी को दाँत से उठाते हैं। ये है भगवान के भगत! उल्लू के पट्ठे, हरामी, खाते हैं मेरा, कहते हैं भगवान का। अच्छा सब मौकूफ। इन निकम्मों को आज से कौडी न दी जाय। भगवान् से माँगें! उनका भगवान् देखें कैसे खिलाता है। कहाँ भगवान् न भगवान् की दुम। पद्दू का पद्मसिंह बना रखा है! हम हैं भगवान! यह रुपया है हमारा सुदर्शनचक्र। यह दस्तावेज है हमारी गदा। और यह हमारी कृपा है पद्म और आशा है शख। हमें भजो, हमें झुको, हम देंगे। हम देंगे—हम—हम—हम। ईश्वर देगा हम! हम! हम!

अशान्ति

नस नस में रोगों ने घर कर लिया है। दवाइयों के जहर से कलेजा जला पडा है। सिर में विचारों की रुई धुनी जा रही है। कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? पलँग पर पडे पडे हड्डियाँ दुखने लगीं। गद्दे काटते हैं। रात भर नींद नहीं आती। इतने खटमल कहाँ से आगये! प्राण निकलें तो पिण्ड छुटे। पर प्राण अभी निकलेंगे नहीं। कितनी साँसत भुगतनी है हे भगवान्, आगे क्या होगा? पीछे क्या होगा? कुछ भी तो नहीं सूझता!

जब से होश सँभाला, जो लड कर कमाया। सारी जवानी परिश्रम के पसीने में लतपत पडी है। रात देखा न दिन। मान देखा न अपमान। सुख देखा न दु:ख— धर्म देखा न अधर्म। जो सामने आया, सब किया। धन मिला भी। उसे भोगा भी, पर भोगा नहीं गया। जीवन के रस में बुढापे की किरकिरी मिल गई। इस पुराने चिराग का सब तेल चौपट बन गया। भोगने की हौंस भोगों को ढोते ढोते ही मर गई। रसोई बनाते बनाते ही भूख मर गई।

चौथे ब्याह की जवान स्त्री है। उसे जब ब्याहा था, ब्याह के पहले देखा था। हर्ष के मारे लोहू नाच उठा था। देखते देखते पेट ही नहीं भरता था। पर आज उससे डरता हूँ। उसकी वह कटोरी सी आँखें भूखे की तरह मेरी ओर घूरा करती हैं। जब तक वह घूरती है भूल कर भी नहीं हँसती। होठ फडकते हैं, पर मुस्कराते नहीं। मैंने उसका क्या बिगाडा है? मुझ पर इतनी विष-वर्षा क्यों? धन, घर, ऐश्वर्य सब कुछ मैंने उसे दिया। यह कहा मिलता? गरीब गाँव की लडकी

थी। ये महल, ये ठाठ, ये दासी–दास कहाँ देखे थे? पर ये सब मानों तुच्छ हैं? और क्या चाहती है? मगल को देखते ही हँसती है, घुल घुल कर उसी से बोलती है—जैसे वह उसका सगा हो! घबराता हूँ। इज्जत आबरू बडप्पन सब कच्चे धागे में बँधे लटक रहे हैं। और वह कच्चा धागा उसी के हाथ में है। एक ठोकर में सब खतम हो जायगा—सिर्फ एक ठोकर में। जब तक हूँ दोनों हाथों से पगडी पकडे बैठा हूँ। जमाना नाजुक है। पर मेरे पीछे क्या होगा? हे भगवान! यह सब किस मायाजाल मे फाँसा? पर किसी का क्या अपराध है! सब फन्दे तो अपने ही हाथ से बनाये थे!

जिस सन्तान की लालसा पर चार चार बालिकाओं का कौमार्य भ्रष्ट किया, वह आज तक नही मिली। जिनके पास रहने को जगह नही, खाने को अन्न नहीं, उनके घर में दर्जनों बालक होते हैं। मैंने सब कुछ सग्रह किया, सब कुछ है, पर इन्हें सुख से भोगने वाला कोई नही है। वर्षों तक रात रात भर जाग कर, झूठ सच बोल कर, न जाने कितनों का अधिकार छीन कर,

कितनों के नीचे गिराकर, यह निमजिला 'मरा हाथी' खड़ा किया है, जिसमें मेरे पीछे दिया जलाने वाला भी कोई नहीं है। हाय कर्म ! लोग रोते हैं कि धन नहीं, धन कैसे मिले ? मैं रोता हूं, इस धनको, इस जवान सुन्दरी स्त्री को कहाँ रखूं ? किसके सिर मारूँ ? कहाँ नष्ट करूँ ? कोई ठौर नहीं ! हाय राम ! जैसे बनता है मन को मारता हूं, क्रोध को दबाता हूं, सज्जनता का व्यवहार रखता हूं, पर फिर भी सब व्यर्थ होता है। कोई सुजनता से नहीं पेश आता। नौकर लोग आँख देखते चोरी करते हैं और फटकारने पर मुह भींच कर हस देते हैं। सब वे अदब हैं। मुनीम गुमाश्ते पीठ पीछे खिल्ली उड़ाते हैं। कोई नहीं सुनता-इस कान सुन कर उस कान उड़ाते हैं। सबको जानता हूं किसी के हृदय में आदर नहीं, भक्ति नहीं, ममता नहीं। सभी मतलब गाँठ रहे हैं। मैं बूढ़ा क्या खाक हुआ ? धनी मालिक बनकर क्या ऐसी तैसी मराई ? सुख नहीं था, शान्ति नहीं थी, इज्जत तो मिलती ! बाहर न सही, अपने ही घर में सही।

कर्जदार दिवालिये हो गये? बिना अदालत गये चलेगा नही। किसकी फिक्र करूँ? दो विधवा बहनें छाती पर थी, अब भतीजी भी आगई। आठ को साठ करते कितने दिन लगेंगे? बापपने का सुख तो नही, दुख मिला। घर मे बरात चढी चली आ रही है। लोग सैकडों रिश्ते निकाल लाते हैं। चचा, ताऊ, साला, साले का साला, धेवती के नवासे का जमाई—सब हाजिर हैं। जाने का नाम नही लेते। सब खा रहे हैं, बिगो रहे हैं। घर लुट रहा है। कुछ प्रबन्ध नहीं। कुछ इन्तजाम नही। क्या करूँ? रात करवटें लेते बीतती है और दिन चिन्ता करते। खाने बैठता हू तो भोजन मुझी को खाये जाता है। घर मे सब कुछ है, पर मेरे लिये मिट्टी है। किसी मे मजा नही। क्या होगा? कैसे दिन कटेंगे? क्या संखिया खाऊँ? कैसे पार पडेगी? हे भगवान्! हे नाथ! हे दयाधाम! तुम्हीं खिवैया हो! तुम्ही पार लगाने वाले हो! तुम्हारे ही आसरे सब कुछ है। हे भगवान्! हाय राम! हरे! हरे!

है। जिस प्रकार चतुर वैद्य तीव्र से तीव्र विष को रसायन बना कर रोगी को सेवन कराकर जीवनदान देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे भयकर विषों को रसायन बना कर जीवन को सफल करते हैं। रूप क्या विष है? प्रेम क्या बिच्छू है? धन क्या सर्प है? बाँधव क्या सिंह हैं? अभागे लोग इनका कितने अविचार से त्याग कर देते हैं। भूल है—भूल है—भ्रम है। ज्ञान का प्रथम गुरु माता है। कर्म का प्रथम गुरु पिता है। प्रेम का प्रथम गुरु स्त्री है और कर्तव्य का प्रथम गुरु सन्तान है। व्यवहार का गुरु परिजन है। धर्म के गुरु पड़ौसी हैं। आचार के गुरु मित्र हैं। इस गुरु मण्डली का अपमान करके अभागा पुरुष कहाँ जाता है? मैं घर में रहूगा। मै विरक्त न बनूगा। मैं कर्मयोग की दीक्षा लूगा। मेरी समझ में सब आगया-अच्छी तरह आगया। जैसे कमल का पत्ता पानी में रह कर, पानी मे उत्पन्न होकर, पानी से अलग रहता है, मैं भी माया में रह कर माया से अलिप्त रहूगा। जैसे सूर्य पृथ्वी के रस को आकर्षण

उस रग मे, क्या है कपडे रगने मे।” सच बात है। क्रोध, काम, लोभ, मोह मन मे बसे हैं। इन्द्रियों को उनका चसका लग रहा है। तब वन जाने से इतना होगा कि यहाँ मनुष्यों से द्वेष और लडाई है—वहाँ शेर चीतों से होगो। यहाँ मनुष्यों से प्रेम है, वहाँ पशु-पक्षियों से होगा। वाह रे भ्रम! क्या मैं सिंह को देख कर डर से चिल्ला न उठूगा? साँप को देखकर क्या मैं उसे अपने बच्चों की तरह छाती से लगा सकता हू? भेडिये को पास बैठा कर क्या अपने साथ आदर से भोजन करा सकता हू? नही। तो सिर्फ कपडे रग कर वनवासी होने से क्या होगा? मैं यदि अपनी स्त्री, पुत्र, परिजन और बान्धवों से प्रेम नहीं कर सका, तो अखिल विश्व पर—समस्त विश्व के स्वामी पर-कैसे प्रेम कर सकूगा? सब विडम्बना है, छल है, आत्म-प्रतारणा है। सुन्दर प्रशस्त कर्मक्षेत्र घर है। कायर घर से डर कर वन को भागते हैं। घर तीव्र शस्त्र है। बुद्धिमान् और वीर उसे लेकर ससार को विजय करते है। मूर्खकायर उसकी तेज धार से जख्म खा बैठते

है। जिस प्रकार चतुर वैद्य तीव्र से तीव्र विष को रसायन बना कर रोगी को सेवन कराकर जीवनदान देता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष काम, क्रोध, लोभ, मोह जैसे भयकर विषों को रसायन बना कर जीवन को सफल करते हैं। रूप क्या विष है? प्रेम क्या बिच्छू है? धन क्या सर्प है? बाँधव क्या सिंह हैं? अभागे लोग इनका कितने अविचार से त्याग कर देते हैं। भूल है—भूल है—भ्रम है। ज्ञान की प्रथम गुरु माता है। कर्म का प्रथम गुरु पिता है। प्रेम का प्रथम गुरु स्त्री है और कर्तव्य का प्रथम गुरु सन्तान है। व्यवहार का गुरु परिजन है। धर्म के गुरु पड़ोसी हैं। आचार के गुरु मित्र हैं। इस गुरु मण्डली का अपमान करके अभागा पुरुष कहाँ जाता है? मैं घर में रहूगा। मैं विरक्त न बनूगा। मैं कर्मयोग की दीक्षा लूगा। मेरी समझ में सब आगया—अच्छी तरह आगया। जैसे कमल का पत्ता पानी में रह कर, पानी मे उत्पन्न होकर, पानी से अलग रहता है, मैं भी माया में रह कर माया से अलिप्त रहूगा। जैसे सूर्य पृथ्वी के रस को आकर्षण

करके संसार पर वर्षा करता है, वैसे ही मैं धन, धर्म, धान्य, जन, सबको आकर्षण करूँगा और पुन: विसर्जन करूँगा। न मेरा है, न मेरा होगा, न मेरा किसी पर दावा है। मैं स्वामी नहीं हूँ। इतनी भूल थी, आज उसे सुधारे देता हूँ। मैं सबका हूँ। इनसे अलग हो ही नहीं सकता। मैं बन्दी हूँ। मुझे स्वतन्त्र होने का अधिकार नहीं है। मैं स्वतन्त्र नहीं होऊँगा। मैं करूँगा, पर अपने लिये नहीं। लाभ हो या हानि। मुझे हर्ष न विषाद। जिसका बने बिगड़े उसका बने बिगड़े। मैं क्या मालिक हूँ। मुझे फल की न चाह—न खबर। मैं बन्दी हूँ। करूँगा, भागूँगा नहीं। और कुछ माँगूँगा नहीं। मैं बन्दी हूँ

ने ऐसा बच्चा देखा है जिसने बापके लाड न देखे हों ? और इसने क्या बचपनको पार नहीं किया है ? आज उसकी यह दशा हुई । प्यार से गया, सुखसे गया, घृणा क्रोध तिरस्कार की बौछारों से मरा जा रहा है । क्या प्यारकी प्यास इसके मनसे बुझ गई होगी ? एक बार जिसने मिश्री खाई है, क्या वह उसके मिठासको भूल सकता है ? वही प्यार मैं इसे दूंगा । जैसे प्यासे को पानी पीनेसे उसके प्राण शीतल हो जाते हैं, जैसे अन्न पाकर भूखोंकी आँखोंमें ज्योति आ जाती है, उसी तरह इसे प्यार पाकर सुख मिलेगा । यह मुझे प्यार करेगा । प्यार क्या यों ही मिलता है ? कितने मरे, कितने खपे, मैं प्यार को पाऊंगा । गुणों पर प्यार होता है, ठीक है । उसे प्रेम कहते हैं । एक प्यार चाहना का होता है, उसे मोह कहते हैं । यह प्यार वासना हीन है, इसमें न गुण देखे जाते हैं न दोष, न नीच न ऊँच, न पाप न पुण्य, । केवल दुख देखा जाता है । चाहे जो हो, चाहें जिस कारण से दुखी हो,

है कि उसे लोग मार डालें। जिसे ठिकाना नहीं, आश्रय नहीं, उत्तेजन नहीं, प्रेम नहीं आदर नहीं, वह इस पृथ्वी पर स्वार्थ की हवा में कितने दिन साँस ले सकेगा? चाहे जो कुछ भी हो। लोग चाहे मुझसे रुठ जायँ, पर मैं उसे अवश्य प्यार करूँगा। यह मेरी अन्तरात्मा की पवित्र आज्ञा है। यह मेरे हृदय का शृंगार है। इसकी स्मृति से मन में प्राण सजीवन होता है। मैं यह कार्य करूँगा।

यह नीच है, अछूत है, मलिन है, इससे क्या? क्या उसके शरीर मे वही आत्मा नही है जो हमारे मे है? उसके जैसे हाड मास क्या हमारे शरीर मे नहीं हैं? वह ईश्वर का पुत्र है। उसके शरीर का प्रत्येक कण ईश्वर के हाथ की निजू कारीगरी है। ईश्वर ने उसे स्वय बनाया है और आज तक पाला है। बिना उसके वातावरण के क्या वह इतना बडा होता? यह बात झूठ है? अब न सही, पर कभी तो उसने प्यार पाया होगा? क्या कोई ऐसा बच्चा देखा है जिसने मा की छाती से चिपट कर मधुर दूध न पिया हो? क्या किसी

ने ऐसा बच्चा देखा है जिसने बापके लाड न देखे। हों ? और इसने क्या बचपनको पार नहीं किया है ? आज उसकी यह दशा हुई । प्यार से गया, सुखसे गया, घृणा क्रोध तिरस्कार की बौछारों से मरा जा रहा है । क्या प्यारकी प्यास इसके मन्से बुझ गई होगी ? एक बार जिसने मिश्री खाई है, क्या वह उसके मिठासको भूल सकता है ? वही प्यार मैं इसे दूंगा । जैसे प्यासे को पानी पीनेसे उसके प्राण शीतल हो जाते हैं, जैसे अन्न पाकर भूखोंकी आँखोंमें ज्योति आ जाती है, उसी तरह इसे प्यार पाकर सुख मिलेगा । वह मुझे प्यार करेगा । प्यार क्या यों ही मिलता है ? कितने मरे, कितने खपे, मैं प्यार को पाऊंगा । गुणों पर प्यार होता है, ठीक है । उसे प्रेम कहते हैं । एक प्यार चाहना का होता है, उसे मोह कहते हैं । यह प्यार वासना हीन है, इसमें न गुण देखे जाते हैं न दोष, न नीच न ऊँच, न पाप न पुण्य,। केवल दुःख देखा जाता है । चाहे जो हो, चाहे जिस कारण से दुखी हो,

उसे प्यार करना, इस प्यार का एक प्रकार है। इस प्रकार को कहते हैं दया। भगवान दयालु हैं। दया भगवान् की नियामक सत्ता है। भगवान् के पालन में दया है, संहार में भी दया है। यही दया उसे अतुल्य न्यायी बनाये है। जो न प्यार के, न आदर के न प्रतिष्ठा के, न कामके पात्र हैं, वे सब दयाके पात्र हैं। अच्छी तरह समझ गया हूं। देखते ही पहचान लूगा। छूटते ही दया करूंगा। यह देखो, मनमें कैसा हर्ष उत्पन्न हुआ, आत्मामें कैसा सन्तोष मिला। यह दयाधनका प्रताप है। हे प्रभु! मेरे हृदयमें दया को स्थायी बना। दया मेरे नेत्रोंमे बसे। दया मेरे पथ का प्रकाश हो।

हो? होहो हो! हमें सम्मान का क्या करना है? ना, हम न लेंगे। हम क्या भिखारी हैं? हम बादशाह हैं। तुम्हें लेना हो तो इससे लो। तुम हीन दीन, दुखिया लोगों! हाय! कैसे अभागे हो—काम क्रोध चिन्ता के ऋणी, लोभ मोह के दास, तुच्छ प्राणो! आओ, इधर आओ। यहाँ शान्ति है। इधर देखो। अपनी ओर देखो, अपने भीतर की ओर देखो। कुछ मिलेगा? भटक रहे हो, तरस रहे हो, तड़प रहे हो, अरे अबोध जनों! किस लिये मिथ्या माया में फँस गये हो? भ्रममें भटक रहे हो? तन, मन और शान्ति को नष्ट करके कमाने में लग रहे हो? इतना रुपया क्या करोगे? इतना क्या खा सकते हो? इतने बड़े महल क्यों बनाये हैं? पागल हो! मूर्ख हो! तसमे के लिये भैंस हलाल करते हो? राई की प्राप्ति को पहाड़ परिश्रम करते हो? तुम्हें सुख कैसे मिलेगा? तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? ईश्वर जानता है, तुम भटक रहे हो। जो मनुष्य परिश्रम तो करे ढेर और प्राप्त करे मुट्ठी भर, वह

है! आहाहाहाहा ! आत्मा प्रकाशित हो रही है ! भीतर से ज्योति निकलती है । मन शान्त बैठा है! अब तक यह सुख कहाँ था? इसीकी खोजमें बूढ़ा हुआ! अब मिला है? बाहरी दुनियां! वाहरे ससार! बाहरी माया! बाहरी चमक! अच्छा फाँसा दिया, अच्छा भटकाया, अच्छा उल्लू बनाया, अच्छा फन्दे मे फँसाया। समय नष्ट गया अलग और बदले में मिला ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध, मत्सर! राम राम! भगवान् को धन्यवाद है । अन्त में मार्ग मिला तो। वाह! कैसा सीधा मार्ग है, कैसी शान्ति है, कैसा सुख है! कुछ चिन्ता नहीं, किसी बातकी चिन्ता नहीं! भूख लगी है तो लगा करे, हम क्या करें? मिलेगा तो खा लेंगे। शीत लगता है तो लगा करे, उसके लिये क्या हम चिन्ता करें? हम? नहीं, हमसे यह न होगा । हम किसी के लिये कुछ न करेंगे । हम तो बादशाह है ।

अरे भोले भाइयो! यह सब क्या लाये हो? हम इसका क्या करेंगे? क्या कहा? सम्मानार्थ लाये

हो? हो हो हो! हमें सम्मान का क्या करना है? ना, हम न लेंगे। हम क्या भिखारी हैं? हम बाद शाह हैं। तुम्हें लेना हो तो इससे लो। तुम हीन दीन, दुखिया लोगों! हाय! कैसे अभागे हो—काम क्रोध चिन्ता के ऋणी, लोभ मोह के दास, तुच्छ प्राणी! आओ, इधर आओ। यहाँ शान्ति है। इधर देखो। अपनी ओर देखो, अपने भीतर की ओर देखो। कुछ मिलेगा? भटक रहे हो, तरस रहे हो, तड़प रहे हो, अरे अबोध जनों! किस लिये मिथ्या माया में फँस गये हो? भ्रममें भटक रहे हो? तन, मन और शान्ति को नष्ट करके कमाने में लग रहे हो? इतना रुपया क्या करोगे? इतना क्या खा सकते हो? इतने बडे महल क्यों बनाये हैं? पागल हो! मूर्ख हो! तसमे के लिये भैंस हलाल करते हो? राई की प्राप्ति को पहाड परिश्रम करते हो? तुम्हें सुख कैसे मिलेगा? तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? ईश्वर जानता है, तुम भटक रहे हो। जो मनुष्य परिश्रम तो करे ढेर और प्राप्त करे मुट्ठी भर, वह

क्या बुद्धिमान् है ? यह मत समझो कि जो कमाते हो वह तुम्हारा है । इसी फेर में मरे हो ! तुम इस में मे भोग कितना सकते हो ? वही तुम्हारा है, बल्कि उस में से भी कुछ अश । यह सब त्यागो, इन्द्रियों की लगाम छोड दो, मनको बर्खास्त कर दो, आत्मा की उपासना करो, अपने आप को देखो—भीतर ही भीतर। इतना क्यों दौड धूप करते हो ? व्यर्थ थकते हो । जो है यहीं है । कस्तूरी मृग की तरह भटको मत । भगवान् तुम्हारा कल्याण करें । ईर्षा, द्वेष, हिंसा, तुम्हारे मन में न हो, प्रेम का प्रसार हो, आत्मा की ज्योति तुम्हारी पथ प्रदर्शक हो । तुम अमर हो, तुम अमृत हो, तुम आत्मा हो, तुम ब्रह्म हो, तुम शुद्ध बुद्ध मुक्त हो । तथास्तु ।

कर तुक गई, मन थक कर सोने लगा। पर जब बन ही गई है, तो क्या लूँ-जरा चख ही लूँ। इतनी साधना की वस्तु कहीं छोडी जाता है? तू थोडी और कृपा कर अभी जा। मेरी इच्छा होगी तो मैं फिर तुझे पुकार लूँगा। पहले भी तो पुकारा था। अनेक बार पुकारा था। तुझे शपथ है, बिना बुलाये मत आना। दुख के दिन तो बीत गये, अब किसे मरने की चाह है?

लौट नहीं सकती? किसी तरह नहीं? यह तो बडा अत्याचार है। अच्छा, किसी तरह भी नहीं? हाय! मैंने तो कुछ तैयारी भी नहीं की। यात्रा क्या छोटी है? यात्रा में ही जीवन गया, अब फिर महायात्रा? हे भगवान्! यह कैसा ससार है? शास्त्र कहते हैं—"यह चक्र है।" अच्छी बात है—चक्र है तो घूमा करे। किसी का क्या हर्ज है? पर यह दूसरों को घुमाता क्यों है? किस मतलब से? किस अधिकार से? यह तो खासी धींगा मुश्ती है। बडा अत्याचार है। जब तक जीओ तब तक ससार यात्रा, और जीने के योग्य न रहो तो परलोक यात्रा! अभागा जीव केवल नित्य यात्री है,

पुकारा। मन ने कहा था, सब दुखों की शान्ति तेरे पास है। तू सब कष्टों की दवा है। तब तू न आई थी। कष्ट मिट गये। अब क्या काम है? ना। अब मैं तुझे नहीं चाहता। जा। वे दिन कट गये हैं। कितना लम्बा जीवन पथ काटा है'। रास्ते भर चाहना ने उकसाया और आशाने झांसे दिये, सिद्धि के नाम सदा दो धक्के मिले। मैंने सोचा, जब चल ही दिया हू, तो मजिल तो तै करनी ही होगी। मैंने झूठ देखा न सच, पाप देखा न पुण्य, सिद्धि की आराधना की। जैसा बना, धर्म की हत्या की, आत्मसम्मान का जूते लगाये, स्वास्थ्य को संखिया दिया, सुख और शान्ति तक को दुर्वचन कहे। अन्त में सिद्धि मिली है—मिली कहाँ मिलने को सिर्फ राजी हुई है। अब तू कहती है-"चलो अभी चलो!" ना, अभी नहीं। अभी तो थाल परस कर सामने आया है। तेरा कसूर नहीं। सारा समय तैयारी में बीत गया। रसोई बनी ही बहुत देरसे, इतनी देरसे कि बनते बनते भूख ही मर गई, जठरा जठर को खा

कर झुक गई, मन थक कर सोने लगा। पर जब बन ही गई है, तो खा लूँ-जरा चख ही लूँ। इतनी साधना की वस्तु कहीं छोडी जाती है? तू थोडी और कृपा कर अभी जा। मेरी इच्छा होगी तो मैं फिर तुझे पुकार लूँगा। पहले भी तो पुकारा था। अनेक बार पुकारा था। तुझे शपथ है, बिना बुलाये मत आना। दुख के दिन तो बीत गये, अब किसे मरने की चाह है?

लौट नहीं सकती? किसी तरह नहीं? यह तो बडा अत्याचार है। अच्छा, किसी तरह भी नहीं? हाय! मैंने तो कुछ तैयारी भी नहीं की। यात्रा क्या छोटी है? यात्रा में ही जीवन गया, अब फिर महायात्रा? हे भगवान्! यह कैसा ससार है? शास्त्र कहते हैं—"यह चक्र है।" अच्छी बात है—चक्र है तो घूमा करे। किसी का क्या हर्ज है? पर यह दूसरों को घुमाता क्यों है? किस मतलब से? किस अधिकार से? यह तो खासी धींगा मुश्ती है। बडा अत्याचार है। जब तक जीओ तब तक ससार यात्रा, और जीने के योग्य न रहो तो परलोक यात्रा! अभागा जीव केवल नित्य यात्री है,

जिसे विश्राम का अधिकार ही नहा। हाय! पहले यह मालूम होता तो यह महल, यह सुख साज, ये ठाठ बाट, यह मोह मैत्री-व्यवहार क्यों बढाता? इस महल की सफेदी के पीछे कितने दीनों का खून है? इस मेरे बिछौने के नीचे कितनों की रोटी का सत्त्व है? तब यह बात मालूम हो जाती, तो यह सब क्यों करता? तब तो सोचा था। एक दिन की बात तो है नहीं, जो दु खम सुखम काट लें। मरने वाले मरें। घर आई लक्ष्मी को क्यों छोड़ें? हाय! अब उन्हें कहाँ पाऊँ। उनका व्यर्थ शाप लिया। मृत्यु! थोडा ठहर! अब यह सम्पदा तो व्यर्थ ही है। ठहर! इसे उन्हें बाँट जाऊँ जिनके कण्ठ से निकाली गई है। पर उनमे कितने बचे हैं? कितने भूखे तडप कर मरे, कितने जेल मे मिट्टी काटते मरे। उनकी स्त्रियों ने जवानी में विधवा हो कर मुझे कोसा। यह माना कि उन पर मेरा ऋण था। पर यदि उन पर नही था—सच मुच नही था, तो क्या मुझे उन्हें जेल में डलवा देना चाहिये था? पिटवाना चाहिये था? बर्तन कपडे नीलाम करा लेने चाहिये थे? मुझे

कभी क्या थी? बुरा किया, गजब किया। हे भाइयो, क्षमा करना। अकेला जा रहा हूं। मृत्यु! मृत्यु! क्या इसमें से थोड़ी भी नहीं ले जा सकता हूं? थोड़ी सी, सिर्फ तसल्ली के लिये। क्या किसी तरह नहीं? हाय! हाय! अच्छा मृत्यु! ले, आज्ञा ले ले। इस समय टल जा। सब ही ले जा, पर मुझे छोड़ दे।

हरे राम! तुझे दया नहीं है। कैसी निष्ठुर है, मूर्तिमती हत्यारी है। ऊपर क्यों चढ़ी आती है? ना—ना—छूना मत। हाथ मत लगाना। छूने ही मर जाऊँगा! हाय! हाय! सब यहीं रहे? मैं अकेला चला। कुछ भी पहले से मालूम होता, तो तैयारी कर लेता। भगवान् का नाम जपता, पुण्य-धर्म करता। कुछ भी न कर पाया। विश्राम के स्थल पर पहुंच कर एक साँस भी अघा कर न ली कि डायन आगई। हे भगवान्! हे विश्वंभर! हे दीनबन्धु! हे स्वामी! हा—नाथ! हे नाथ! हे नाथ! तुम्हीं हो—तुम्हीं हो—तुम्हीं हो।

रुदन

अन्त में वह घड़ी भी आही पहुंची। मुझे भास गया, कच्चे धागे में तलवार लटक रही है, क्या जाने कब टूट पड़े। हवा के झोंके झकझोर रहे थे। मन रोना चाहता था पर स्थान न था। रात ही को यह विचार लिया था। सवेरे जब नीचे उतरा, माता ने कहा—"बेटा। कला को देखना तो, आज वह कैसा कुछ करती है। मेरा कलेजा काँप उठा। मैंने मन में कहा—क्या [illegible] आ पहुंची? हिम्मत करके भीतर गया। अँधे·

सारी खिडकियाँ बन्द थीं। एक मिट्टी का दिया टिमटिमा रहा था। मैंने खाट के पास जाकर देखा—काँप गया। सच मुच घडी आ पहुची थी। मैं एक टक देखता रहा—न बोला न चाला। माता ने कहा—"बेटी! देख तो यह कौन है?" उसे चैन नहीं था। साँस में कष्ट होता था। उसने उस कष्ट को सह कर मेरी ओर देखा। आँखें सफेद थीं, फट कर दूनी हो गई थी। उन्हीं आँखों में से आँसुओं की धार बह चली। मुझसे कुछ भी न बन पडा। माता ने उसके आँसू पोंछ कर कहा—"बिटिया! देखो तो यह सामने कौन है।" कला ने बडे कष्ट से कहा—"बडे भैया।" इतने ही में वह हाँफने लगी। उसे दो एक हुचकी आई। पिता जी उसे गोद में लिये बैठे थे। उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से कहा—"घबराओ मत भाइयों! सब भगवान् से प्रार्थना करो, अब तो यह हमारी है नहीं, भगवान् दे जाँय, तो दे भी जाँय! वे सँभल न सके, रोने लगे। कला उनकी गोद में झुक गई। उसका रंग फक हो गया था। सब झपट कर ऊपर लपके। सबने मानो [illegible] एक स्वर से

कहा—"कला ! कला !" मैं ठहर न सका। वहाँ से साँस बन्द करके बाहर भागा। बाहर उसके सुसराल के आदमी, उसके पति, उद्विग्न बठे थे। सब बोले—"क्या हाल है?" मैंने बोलना चाहा,—पर बोल न सका। भीतर से रुदन उठा। प्रथम एक कण्ठ, पीछे अगणित—अथाह गगनभेदी रुदन। सब ने कहा—"क्या हो गया?" पिता पागल की तरह दौड़े आये। उनकी आँखों में आँसू नहीं थे। उन्होंने गाकर कहा—"लुट गया धींग धनी धन तेरा।" उनके नेत्रों में उन्माद था। दो चार पड़ोसियों ने उन्हें पकड़ कर धैर्य रखने की प्रार्थना की। उन्हों ने करारे स्वर मे कहा?—"मैं क्या रोता हू? मैं क्या बालक हू? मुझे क्या तुम बेसमझ समझते हो?"

मैं यहाँ भी न ठहर सका। भीतर गया। माता ने आकाश फाड़ रक्खा था। वह कला के शरीर को छोड़ती ही न थी। मैंने उसे गोद में लिया। पर कुछ बोल न सका। मैं भी रो रहा था। मन को रोका। मैंने कहा—"अम्मा! रोओ मत। तुम्हारी बेटी का भाग्य कितनों की बेटियों से अच्छा है। वह जहाँ गई, धन धान्य लक्ष्मी

को लेकर गई। अब वह सुहागन ही पृथ्वी से जा रही है। ऐसा सौभाग्य कितनी स्त्रियों को मिलता है?"

माँ को कुछ आश्वासन मिला। उसके उन्माद पर कुछ सावधानी के छींटे पडे। उसने गगनभेदी क्रन्दन छोड कर कला का गुण गान शुरू किया। अब मैं ठहर न सका। स्मृति ने कष्ट देना प्रारम्भ किया। बचपन से अब तक के चित्र सामने आने लगे। पिता जी ने बाहर से ही स्वर अलापा—"लुट गया धींग धनी धन तेरा।" मैं वहाँ से भी भागा। ऊपर जाते हुए देखा, सीढियों में सुभगा पडी ठुसुक रही थी। मैं उसे उठा कर ऊपर ले चला। मेरे छूते ही वह बिखर गई। वह क्रन्दन, वह मर्मस्पर्शी उक्तियाँ, वह भयकर—हाय, सर्वथा असह्य थी। जाता कहाँ? छाती गले तक भर रही थी। जरूरत रोने की थी, पर रोने को जगह न थी। जगह एकान्त चाहिये। पर उस घर का वायु मण्डल रुदन से भर रहा था। पडोस की स्त्रियाँ घर में जुट रहीं थीं। पडोसी द्वार पर इकट्ठे हो रहे

थे। आश्वासन रुदन को बढाता था। धैर्य का टीका न था। विफलता थी, जलन थी, सन्ताप था, खिसियाहट थी, अशक्ति थी, लाचारी थी और रुदन था—रुदन था—रुदन था और रुदन था।

उड़ा कर कहा—"मूर्ख ! देखता नहीं है। ऐसी कितनी बार चढ़ती है ? किसके इतने भाग हैं ? रोने वाले एक एक बूँद को तरसते हैं। औसर चूकने पर क्या है ? यो-यो-यो।"

मैं मूर्ख बन गया। स्त्री का मूर्ख कहना नहीं सहा गया। पर मूर्ख बन गया। जो कुछ था उसे दे डाला। भूमि उर्वरा थी, वह उगा भी, पका भी और मुझे मिला भी। पर पचा नहीं। शरीर ढेर हो चुका था। इतने दिनों के आँधी मेहों ने कुछ न छोड़ा था। मैं गिर गया खा कर ! लोग भूखों मरते हैं, मैं अघाकर मरा। धौले केशों पर धूल पड़ी। बुढ़ापे की मिट्टी ख्वार हुई। बात बन कर बिगड़ी। आबरू की पगड़ी की धज्जियाँ उड़ गईं। मेरा क्या अपराध था ? साहस में तो कसर छोड़ी न थी। चिन्ता की भयंकर आग इस तरह छाती में छिपाई थी कि एक लौ भी न दीखने पाई। शोक के घाव कपड़ों से ढक लिये थे। चेहरे की झुर्रियों को हँस कर और आँखों की रुखाई को चश्मे से ढक लिया था। पर हाय रे बुढ़ापे ! तेरा बुरा हो। तेरा सत्यानाश हो।

मेरा कसूर क्या था? इतने नजदीक पुल को छोड कर कौन तैर कर पार करेगा? पार करने पर—बस वह दिन है और आज का दिन है।

उस पार जाना जरूरी था। लालसा की नदी बे-तरह चढ रही थी और किनारे की भूमि उर्वरा हो रही थी। पास में सुख बहुत थोडा था। उसने कहा—"कुछ तुम्हारे पास है कुछ मेरे। आओ इसे बो दें। एक के हजार होंगे। अभी जिन्दगी बहुत है। इतने से कैसे चलेगा?" मेरा दिल घावों से छलनी हुआ पडा था, न मुझे रुचि थी, न उत्साह, न हौंस। इसके सिवा, मुझे बोने का तजुर्बा नही था। बोना मेरे प्रारब्ध के अनुकूल भी नही था। जब जब बोया, सूका पड गयी या वन-पशु चर गये। पशु बने बिना रखाना कठिन है। मुझे खूब याद है। मैंने बहुत नाह नूह की थी। मैंने कहा था—"मुझे कहाँ बोना आता है? क्यों पास की माया को मिट्टी में मिलाती हो? ना, मुझे इसकी हौंस नहीं है। तुम जाओ।"

इसी पर उसने मुझे मूर्ख बनाया। मेरा मज़ाक

उड़ा कर कहा—"मूर्ख ! देखता नहीं है। ऐसी कितनी बार चढ़ती है ? किसके इतने भाग हैं ? बोने वाले एक एक बूँद को तरसते हैं। औसर चूकने पर क्या है ? वो-वो-ञो।"

मैं मूर्ख बन गया। स्त्री का मूर्ख कहना नहीं सहा गया। पर मूर्ख बन गया। जो कुछ था उसे दे डाला। भूमि उर्वरा थी, वह उगा भी, पका भी और मुझे मिला भी। पर पचा नहीं। शरीर ढेर हो चुका था। इतने दिनों के आँधी मेहों ने कुछ न छोड़ा था। मैं गिर गया खा कर ! लोग भूखों मरते हैं, मैं अघाकर मरा। धौले केशों पर धूल पड़ी। बुढ़ापे की मिट्टी ख्वार हुई। बात बन कर बिगड़ी। आबरू की पगड़ी की धज्जियाँ उड़ गई। मेरा क्या अपराध था ? साहस में तो कसर छोड़ी न थी। चिन्ता की भयकर आग इस तरह छाती में छिपाई थी कि एक लौ भी न दीखने पाई। शोक के घाव कपड़ों से ढक लिये थे। चेहरे की झुर्रियों को हँस कर और आँखों की रखाई को चश्मे से ढक लिया था। पर हाय रे बुढ़ापे ! तेरा बुरा हो। तेरा सत्यानाश हो।

अठ्यानाश हो। तैनें सब गुड गोवर कर दिया। तैनें मरे को मारा। तैनें सूखे पेड को जड से ही उखाड पटका निर्दयी!!

उसे कुछ परवा ही न थी। हँसती थी। उसी तरह बल्कि उससे भी अधिक जोर से। सफलता का गर्व उसके होठों और नेत्रों में मस्ती कर रहा था और यौवन का गर्व उसकी छाती से फूटा पडता था। मैं कहाँ तक तन कर खडा होता? मैं हार गया। वह सब कुछ ले चली। मैंने घायल सिपाही की तरह आखों के अनुनय से रस की एक बूद--सिर्फ एक बूद माँगी थी। क्या उस सरोवर में एक बूद से घाटा पड जाता? जब मेरे दिन थे तो बिन माँगे छक जाता था। वही मैं था। वह दुपहरी के सूर्य की तरह ज्वलन्त नेत्र दिखा कर चली गई। कलेजा तक झुलस गया। यही दुनिया है। इसी में रहने को प्राणी क्या क्या करता है। यही दुनिया का अन्त है। जाने वालों के लिये दुनिया का यही प्यार है। वाहरी दुनिया! और वाहरे तेरा अन्त!!!

इतना व्याप्त। यह लो लीन हो गया। जैसे लहर लीन हो जाती है, जैसे स्वर लीन हो जाता है। वह भी मैं ही हू। मैं अनन्त में फैल गया हू। न आदि है न अन्त, न रूप है न स्पर्श—केवल सत्ता है। वह शुद्ध बुद्ध मुक्त है। प्यास बुझ गई है। काँटा सा निकल गया है। नींद सी आ गई है। कुछ नहीं कह सकता। कथन के बाहर है। प्रकाश का कण हो गया हू। कण का प्रकाश मैं हू। व्याप्त सामर्थ्य की धार बह रही है—पर क्षय नहीं होती। वह कहीं से आ भी रही है। न शीत है न उष्ण, न इधर है, न उधर। कहना व्यर्थ है। अब अप्रकट कुछ नहीं। प्राप्य कुछ नहीं। महान् कुछ नहीं। किसी का अस्तित्व नहीं दीखता। केवल मैं हू। मैं वही हू। यह वही है। यही है वह।

मैं सहायता नहीं करता है। सब को छूता हूं, सब रस का स्वाद बराबर आ रहा है, मन सब व्याप्त हो रहे हैं, सब गन्ध बस रही हैं। पर किस तरह? सो पता नही लगता। अपूर्व है। सब अपूर्व है। यहाँ सब प्राप्त है। अब मालूम होता है, इच्छा एक रोग था। मन एक बेगार थे। इन्द्रियाँ भार थीं मूर्ख था। इन्हें खूब सजाया। उल्लू की तरह नाचा। गधे की तरह लदा फिरा और अपराधी की तरह बँधा रहा। ठहरो। मुझे अपने आप को समझ लेने दो। वाह! मैं क्या हूं? जहाँ इच्छा जाती थी अब वहाँ मैं जा सकता हूं, जो मन करता था वह मैं अब कर सकता हूं। बडा मजा है, बडा आनन्द है, बडा सुख है। कभी नही मिला था। मानों मैंने स्नान किया है। या? ठहरो सोचने दो, कुछ भी समझ में नहीं आता। मानों तग कोठरी की कैद से निकल कर स्वच्छ हरे भरे मैदान में आ गया हूं। कहीं भी दर्द नही है। कहीं भी कसक नहीं है। न प्यास है न भूख। न उठना, न बैठना, न सोना। सब कुछ मानो एक साथ स्वय हो रहा है। प्रतिक्षण हो रहा है। यह क्या है! इतना तेज!

इतना व्याप्त! यह लो लीन हो गया। जैसे लहर लीन हो जाती है, जैसे स्वर लीन हो जाता है। वह भी मैं ही हू। मैं अनन्त में फैल गया हू! न आदि है न अन्त, न रूप है न स्पर्श—केवल सत्ता है। वह शुद्ध बुद्ध मुक्त है। प्यास बुझ गई है। काँटा सा निकल गया है। नींद सी आ गई है। कुछ नहीं कह सकता। कथन के बाहर है। प्रकाश का कण हो गया हू। कण का प्रकाश मैं हू। व्याप्त सामर्थ्य की धार बह रही है—पर क्षय नहीं होती। वह कही से आ भी रही है। न शीत है न उष्ण, न इधर है, न उधर। कहना व्यर्थ है। अब अप्रकट कुछ नहीं। प्राप्य कुछ नहीं। महान् कुछ नहीं। किसी का अस्तित्व नहीं दीखता। केवल मैं हू। मैं वही हू। यह वही है। यही है वह।

आये थे। वे शीतल वायु के झकोरों से भरी कुन्जों में मुग्ध और तृप्त होकर उसे हृदय मन्दिर में लिये बठे थे। मैंने कभी उनके सुखसौभाग्य पर अपना मन न ललचाया, कभी उन पर डाह न की। अपने उस खेडी के टुकडे को उनकी हीरों से लदी हुई सोने की प्रतिमा से निकृष्ट न समझा। कारण, मुझे अपने ऊपर बहुत भरोसा था। अपने हाथ की करामात पर मैं इठलाता था। आखिर मैंने अपनी समस्त जवानी में जी तोड परिश्रम करके उस खेडी के टुकडे को इस्पात ही बना कर छोडा।

अब कार्य सरल था। आकृति, प्रखरता और उपयोग बस। साँचे में ढाल कर मैंने उसकी आकृति बनाई। अब वह एक नाजुक तलवार थी। बिजली के समान उसमें चमक थी, धार की प्रखरता का क्या कहना है? बाल को चीर सकती थी।

उसी को मैंने हृदय मन्दिर के उस शून्य सिंहासन पर स्थापित कर दिया। उसी की मैं पूजा करने लगा। उसे देख २ कर मैं धीरे २ वीर और साहसी बनने लगा। राजा और सम्राटों तक उसकी पहुच हुई और

इसी की प्रतिमा बना कर उस मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दूंगा। पर शीघ्र ही समझ गया—यह मूर्खता की बात होगी। पर, स्वर्ण में यदि कुछ बनने की शक्ति है? तो इस्पात में भी तो कुछ बननेकी शक्ति है? बुद्धि मानों को-जिस पदार्थ में जो बन सके, उससे वही बनाना चाहिये। मैंने प्रतिमा बनाने का विचार ही छोड दिया। मैंने उस खेडी के भद्दरग टुकडे को भट्ठी में डाल दिया। ज्वलन्त उत्ताप में तप कर उसका रग भी लाल हो गया। फिर मैंने धडाधड उस पर चोटें की। धडाधड। फिर पीटा, फिर तपाया। तह जमाई। तपाया और पीटा। ग्रीष्म की दुपहरी, झुलसाने वाली लू और वह भट्ठी का असह्य उत्ताप, जवानी की नगी छाती पर सहा। पसीना कालौंस और मैल से शरीर भर गया था, कोमल स्वच्छ हाथ कठोर हो गये। पर मैं उस लोहे के टुकड़े के पीछे पड गया। जवानी के सारे उमग भरे दिन उस कडे परिश्रम में ताप—पसीने और कालौंस में निकल गये। मेरे कितने ही मित्र, जिन्हें मैंने बाल काल में उस कल्पित प्रतिमा की मोहनी झाकी करने का वचन दिया था, अपने लिये एक एक प्रतिमा ले

आये थे। वे शीतल वायु के झकोरों से भरी कुञ्जों में मुग्ध और तृप्त होकर उसे हृदय मन्दिर में लिये बैठे थे। मैंने कभी उनके सुख सौभाग्य पर अपना मन न ललचाया, कभी उन पर डाह न की। अपने उस खेडी के टुकडे को उनकी हीरों से लदी हुई सोने की प्रतिमा से निकृष्ट न समझा। कारण, मुझे अपने ऊपर बहुत भरोसा था। अपने हाथ की करामात पर मैं इठलाता था। आखिर मैंने अपनी समस्त जवानी में जी तोड परिश्रम करके उस खेडी के टुकडे को इस्पात ही बना कर छोडा।

अब कार्य सरल था। आकृति, प्रखरता और उपयोग बस। साँचे में ढाल कर मैंने उसकी आकृति बनाई। अब वह एक नाजुक तलवार थी। बिजली के समान उसमें चमक थी, धार की प्रखरता का क्या कहना है? बाल को चीर सकती थी।

उसी को मैंने हृदय मन्दिर के उस शून्य सिंहासन पर स्थापित कर दिया। उसी की मैं पूजा करने लगा। उसे देख २ कर मैं धीरे २ धीर और साहसी बनने लगा। राजा और सम्राटों तक उसकी पहुंच हुई और

वह उनके हीरों और मोतियों के ढेरों से कहीं अधिक मूल्य की कूती गई!!

सिर्फ अकस्मात के संयोग की बात थी, और मेरी सनक थी, जो मैंने उसे इतना कमाया, ऐसा प्रखर बनाया। परन्तु मैंने कभी उससे कठोर काम नहीं लिया। उसकी आब और धार को कभी हवा न लगने दी। मैं सिर्फ उसकी धार से नित्य आखों में सुर्मा लगाया करता था।

मैंने उसे समय के लिये यत्न से रख छोडा था। खयाल था, कभी आन और शान पर जूझने का समय आयगा, तब मेरी यह प्राणों से प्यारी वस्तु अपने जोहर दिखायगी। मेरे प्यारे मित्रों और सहयोगियो की सजीली स्वर्ण प्रतिमाओं पर जब कोई भयंकर सकट उपस्थित होगा—तो मेरी यह सजीली चीज बिजली के समान एक हो तीव्र और असह्य कडक दिखा कर अपनी वास्तविकता चरितार्थ करेगी। उस समय मेरा जीवन और परिश्रम सफल होगा!

दो बार देवता उसे मागने आये, पर मैंने उन्हें नहीं

दो। इस ससार की तो किसी वस्तु के बदले में मैं उसे दे ही नहीं सकता था, मैंने उसे लोकोत्तर बदले में भी देने से इन्कार कर दिया।

उस दिन प्रात काल जाग कर देखा—वह धरती में दो टूक हुई पडा है। पहिले तो मैं कुछ समझा ही नहीं। मैंने सोचा स्वप्न है, उंगली दाँतों से काट कर देखा, बाल नौच कर देखा! स्वप्न न था सत्य था!!!

कलेजा मसोस कर बैठ गया। अब कुछ नहीं हो सकता था। मित्र और बन्धु सुनते ही दौड आये। किसी ने कहा—लो, यह स्वर्ण प्रतिमा ले लो। किसी ने कहा—यह मेरे नेत्रों की ज्योति ले लो। किसी ने कहा—यह मेरा सबसे बडा हीरा ले लो। पर! पर-खेडी का टुकडा तो किसी के पास न था। मैंने बैठे ही बैठे-जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी—इधर उधर नीचे ऊपर देखा—नहीं था!!

खोज में जाने के अब दिन नहीं रहे। परिश्रम और उत्ताप सहने की शक्ति और साहस नहीं रहा।

आराधना योग्य जवानी न रही । मन के हौसले और और चाह मर गये । मैंने टूटे टुकडे देवार्पण कर दिये। अब मैं अकेला बैठा हूँ। और सुस्ता कर जवानी के घोर परिश्रम की थकान को उतार रहा हूँ।

हास्य में हाहाकार

जीवन की हँसती हुई दुनियाँ का अन्त समय आगया ! ग्रीष्म के कृष्णपक्ष की सन्ध्या की तरह कराली काल की कालिमा ने उस भव्य मुखमडल पर अधिकार जमा लिया। पर वे दोनों आखें सन्ध्या के तारे की तरह आनन्द बखेर रहीं थी। वह मुझे देखकर जरा हँसी। प्रतिपदा के चन्द्रमा की तरह अन्तिम बार उसकी धवल् दन्त पक्ति के दर्शन हुये। प्यार का रहा सहा रस उस हँसी में आ जूझा। वह दारुण

महा यात्रा की घन्टी हृदय धाम में सुन रही थी-और अपनी स्मृतियों की गाँठ पोटली सँगवा कर बाँध रही थी। साथ ही सारे ससार से न सह सकने योग्य उस वेदना को-वह उस अन्तिम हास्य में टालने की चेष्टा कर रही थी। उसने अपना सब साहस बटोर कर-इकतारे के कम्पित स्वर मे कहा—"स्वामी जी! खड़े क्यों हो, मेरे पास बैठ जाओ।

मैं खड़ा रहा। सामने दूध के समान शैया पर वह ढेर हुई पड़ी थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ—उस सन्ध्या के बढ़ते हुये अन्धेरे में मैं किसी नदी के तीर पर खड़ा हू—और चाँदी के समान स्वेत बालुका के बीच क्षीणाङ्ग नदी दाव पेच खाती—चुप चाप पैरों के पास से बही चली जा रही है। अभिलाषा और अतीत की छायाएँ मूर्तिमान होकर सामने आ खड़ी हुई। सब प्रिय और मनोहर थीं। पर मैं उन्हें देख कर डर गया। उसने फिर उसी स्वर में कहा—स्वामी जी! वास्तव में निराशा का नाम ही जीवन है— फिर भी मनुष्य उसे प्यार करता है, मेरे पास बैठो-और कहो-तुम जीवन को नहीं-मुझे

प्यार करते थे ! ! मैं कुछ और ही सोच रहा था—मैं सोच रहा था—इस चलती धार में से और एक घूट पीलू ? मैं घुटनों के बल धरती पर वहीं बैठ गया ! ! !

साफ साफ कुछ नही दीखता था। मानों महा-रात्रि आ रही थी। आँधी के झोंकों से कम्पायमान जल की लहरों की तरह उसका श्वास उमण्ड रहा था। उस में न हाय थी न हास्य था—केवल एक अस्फुट ध्वनि थी। चौदह वर्ष का सुपरिचित हाथ ऊपर को उठा—चौदह वर्ष प्रथम मैंने उसे जिस उछाह और प्रेम से पकडा था—उससे भी अधिक उछाह और प्रेम से उसे मैंने अपने दोनों हाथों में पकडा। पर अब उसमें वह गर्मी नही रही थी। रस की बूद बूद सूख जाने पर भी वह हसी। अटल अटूट हास्य था। उसमें स्पन्दन नहीं था, संकोच नहीं था, अस्थिरता नहीं थी, परिवर्तन नहीं था। मैं उसी में डूब गया। पीछे से एक हाहाकार उठा—और क्षण भर में घर का वातावरण दिगन्त व्यापी हाहाकार से भर गया ! ! !

तत्क्षण

अनन्त कालीन पथिक की भांति निश्शब्द शान्ति शैय्या के पास खड़ी थी। और अनन्त मृत्युदर्शक तारे-अश्रुबिन्दु की तरह चमक रहे थे। उसने अपने जाते हुये जीवन को धन्यवाद दिया। अपने अस्तगत भाग्य को सराहते हुये कहा—"आज मेरे सौभाग्य का उत्कर्ष है" और सिर नवा लिया। एक क्षण अपने विछुओं को उसने जी भर कर देखा।

मैं रो रहा था—पर उन नेत्रोंने ढूंढ लिया। अन्तस्तल

में घुस जाने वाली मुस्कुराहट उसके अप्रतिम होठों पर आई, उसने क्षीण स्वर में कहा 'अब तुम यहीं बैठे रहना"।

क्षण भर बाद, जब मृत्यु उसकी तरफ अन्धकार से अपना हाथ बढ़ाने लगी—तो उसने विश्वास पूर्वक उसे थाम लिया !!

तब से—मेरा जीवन अकेला है, और वह मुझसे अलग है। पर अभी भी वह मुझे प्यार करती है। हमारा सम्मिलन ग्रीष्म और शिशिर के समान परस्पर का प्यासा था। और हमारा बिछोह केवल मृत्यु न थी। अविश्वासी चाहे जो कुछ कहें—पर न वह प्रेम अभी खर्च हो गया है और न उसका व्यवच्छेद हुआ है।

मैं गाऊगा नहीं। यद्यपि सब कुछ गम्भीर गर्त में डूब गया है पर मैं इसमें भूलने वाला व्यक्ति नहीं हूं। विचार धाराओं से वह दूर है। वह नक्षत्रों को बांच रही है। वह निकट और दूर में व्याप्त है। प्रशान्त रात्रि के सन्नाटे में मैं उसकी पसन्द का गीत गाता हू। और वह स्थिर होकर सुनती है।

मेरी विश्वासी आंखें उस पर अचल हैं। मोह की मदिरा, जो प्यार की ही तरह प्यारी मालूम होती है- दृष्टि के नीचे पड ही जाती है। और मैं अभागा असयत हो उठता हू। परन्तु वे अतीत कण्टकित हाथ और उस मुख से सुवासित वातावरण की यह ध्वनि कि— "वैवाहिक जीवन के दो भागीदार-और दोनों परस्पर निर्भर और विश्वासी" मेरे रक्षक हैं, उस ध्वनि में ही मेरा समस्त जीवन स्वप्न था-और जगत का कटुतर जीवन उसीसे मधुर हो गया था—जैसे मिश्री से औषध का स्वाद बदल जाता है। वे दोनों पुराने हृदय एक ही सम और एक ही स्वर ताल पर फिर विवाह गीति गावेंगे।

अब तो कहने का कोई मौका ही न रहा। पर वह बात अब भी हृदय में वैसी ही धरी है। आँसुओं के साथ वह आँखों में आ जाती है और हास्य के साथ ओठों पर आ खड़ी होती है। मैंने उसे इन सत्रह वर्षों के दीर्घ काल में बड़ी कठिनाई और विवेक से, हिन्दुओं की जवान विधवा बेटी की तरह दबोच कर भीतर ही रख छोड़ा है। हृदय मन्दिर के अन्तस्तल में उसके स्थान पर इसी को मैंने बसा लिया है। वही अब उसके बाद मेरी जीवन संगिनी है। और वह, अपने प्रिय निवास के पात्रों में—अपने सुहाग भरे हाथों से लबालब स्नेह भर गई थी उसमें मैंने दिया जला दिया है। एक क्षण को भी मैंने उसके पीछे उस मन्दिर को सूना और अन्धेरा नहीं छोड़ा है। आंधी और तूफान के झोंके आये, दीये की लौ काँपी–पर बुझी नहीं। आशा होती है इस टूटती रात की पीली और ठण्डा घड़ियाँ भी, इसी धुंधले प्रकाश के सहारे कट जावेंगी। अभी पात्र में स्नेह है, बहुत है।

दुर्धर्ष जीवन सग्राम में—जिस में योग देने की उसकी लालसा को सुन कर मुझे पहिले हँसी आ गई थी—उदग्रीव होकर चली—तब फिर मन में आया कि कह ही दू, पर मोह और अनवकाश ने कभी पीछा न छोडा। कभी एकान्तता न हुई। कभी अच्छी तरह देख न सका।

जीवन के १४ वर्ष बीत गये, जैसे सपने के दिन बीत जाते हैं, जैसे थकावट की रात बीत जाती है। हम दोनों, धुन में मस्त, जवानी की उमग में इठलाते हुये, बढ़-बढ़ कर—एक से एक बढ़ कर—उद्ग्रीव होने की स्पर्धा करते हुये-बढ़े चले गये, बढ़े चले गये, बढ़े चले गये!!!

एकाएक वह रुक गई। मैंने बहुत हिलाया डुलाया पर कुछ न हुआ। गर्दन झुकती ही गई। आखें मिचती ही गई। वह हौंस, वह उमग, हास्य-गर्व-तेज सब खो गया! जैसे इन्द्र धनुष खो जाता है। जैसे कुप्पे की फूंक निकल जाती है, उस घडी वह पर ही आ गई थी, पर फिर वह पल भर भी न

अब तो कहने का कोई मौका ही न रहा। पर वह बात अब भी हृदय में वैसी ही धरी है। आँसुओं के साथ वह आँखों में आ जाती है और हास्य के साथ ओठों पर आ खड़ी होती है। मैंने उसे इन सत्रह वर्षों के दीर्घ काल में बड़ी कठिनाई और विवेक से, हिन्दुओं की जवान विधवा बेटी की तरह दबोच कर भीतर ही रख छोड़ा है। हृदय मन्दिर के अन्तस्तल में उसके स्थान पर इसी को मैंने बसा लिया है। वही अब उसके बाद मेरी जीवन संगिनी है। और वह, अपने प्रिय निवास के पात्रों में—अपने सुहाग भरे हाथों से लबालब स्नेह भर गई थी उसमें मैंने दिया जला दिया है। एक क्षण को भी मैंने उसके पीछे उस मन्दिर को सूना और अन्धेरा नहीं छोड़ा है। आंधी और तूफान के झोंके आये, दीये की लौ कांपी—पर बुझी नहीं। आशा होती है इस टूटती रात की पीली और ठण्डी घड़ियाँ भी, इसी धुंधले प्रकाश के सहारे कट जायेंगी। अभी पात्र में स्नेह है, बहुत है।

दुर्धर्ष जीवन संग्राम में—जिस में योग देने की उसकी लालसा को सुन कर मुझे पहिले हँसी आ गई थी—उद्ग्रीव होकर चली—तब फिर मन में आया कि कह ही दु, पर मोह और अनवकाश ने कभी पीछा न छोडा। कभी एकान्तता न हुई। कभी अच्छी तरह देख न सका।

जीवन के १४ वर्ष बीत गये, जैसे सपने के दिन बीत जाते हैं, जैसे थकावट की रात बीत जाती है। हम दोनों, धुन में मस्त, जवानी की उमंग में इठलाते हुये, बढ़-बढ़ कर—एक से एक बढ कर—उद्ग्रीव होने की स्पर्धा करते हुये-बढे चले गये, बढे चले गये, बढे चले गये!!!

एकाएक वह रुक गई। मैंने बहुत हिलाया डुलाया पर कुछ न हुआ। गर्दन झुकती ही गई। आँखें मिचती ही गईं। वह हौंस, वह उमंग, हास्य-गर्व-तेज सब कहीं खो गया! जैसे इन्द्र धनुष खो जाता है। जैसे रबर के कुप्पे की फूक निकल जाती है, उस घडी वह बात होठों पर ही आ गई थी, पर फिर वह पल भर भी न ठहरी।

अब तो कहने का कोई मौका ही न रहा। पर वह बात अब भी हृदय में वैसी ही धरी है। आँसुओं के साथ वह आँखों में आ जाती है और हास्य के साथ ओठों पर आ खड़ी होती है। मैंने उसे इन सत्रह वर्षों के दीर्घ काल में बड़ी कठिनाई और विवेक से, हिन्दुओं की जवान विधवा बेटी की तरह दबोच कर भीतर ही रख छोड़ा है। हृदय मन्दिर के अन्तस्तल में उसके स्थान पर इसी को मैंने बसा लिया है। वही अब उसके बाद मेरी जीवन सगिनी है। और वह, अपने प्रिय निवास के पात्रों में—अपने सुहाग भरे हाथों से स्वाल्प स्नेह भर गई थी उसमें मैंने दिया जला दिया है। एक क्षण को भी मैंने उसके पीछे उस मन्दिर को सूना और अन्धेरा नहीं छोड़ा है। आंधी और तूफान के झोंके आये, दीये की लौ कांपी—पर बुझी नहीं। आशा होती है इस टूटती रात को पीली और ठण्डा घड़ियाँ भी, इसी धुधले प्रकाश के सहारे कट जायेंगी। अभी पात्र में स्नेह है, बहुत है।

जब दिन का प्रकाश फैल जायगा, मैं उसे ढूंढने निकलूंगा। जहां मिलेगी, वहीं भेंट होते ही अब की बार पहिले वह बात कह दूंगा। उसे छोड़ कर वह बात और किसी से कहने योग्य ही नहीं है।

हुआ जहाज समुद्र में डूब रहा है। तुम्हारे इस धड़कने का नीरव रव ग्रीष्म की ऊषा के प्रारम्भिक अन्धकार में अधजगे पक्षियों के कलरव के समान उदास मालूम होता है।

धड़क गये? हाय! तुम मेरी स्वर्गीया पत्नी के मधुर चुम्बन की स्मृति की तरह प्यारे थे। तुम मेरे अनुत्पन्न पुत्र के छोटे से होठों की निर्दोष मुसकुराहट की स्वप्न-वासना की तरह मधुर थे। प्यार की प्रथम चोट की तरह गम्भीर और तूफान की तरह जंगली थे!

पानी हो गये ? निर्दयी ! हृदय का सारा रस निचोड लाये, क्या आखों के तेज को बुझाने का इरादा था ?

हे अमल धवल उज्ज्वल उत्तप्त जल कण ! हे हृदय के रसीले रस ! ऐसा तो न करो, जब तक हृदय है तब तक उसी में रहो, उसे इतना न निचोडो। कुछ अपनी आवरू का खयाल करो, कुछ मेरे प्यार का लिहाज करो, कुछ उस दिन का मान करो-जब रस बन कर रम रहे थे। कुछ उस दिन का ध्यान करो जब बाहर आकर दुर्लभ द्रव्य पाया था।

तुम उस दिन के लिये ठहरो प्यारे ! जिस दिन अभिलाषा की साध पूरी होगी, तुम्हारा जी चाहे तो उस दिन तुम इन आँखों को बहा ले जाना। न हो अन्धी कर देना। मुझे फिर कुछ देखने की हौंस न रहेगी।

हे आनन्द के उज्ज्वल मोती ! इन आखों में तुम ऐसे सज रहे हो जैसे हरे भरे वृक्ष की नवीन रक्ताभ कोंपल । पर तुम्हारा ढरकना—बहुत करुण है—बहुत उदास है—तुम ढरकते क्या हो—मानो प्यारों से भरा

हुआ जहाज समुद्र में डूब रहा है। तुम्हारे इस ढरकने का नीरव रव ग्रीष्म की ऊषा के प्रारम्भिक अन्धकार में अधजगे पक्षियों के कलरव के समान उदास मालूम होता है।

ढरक गये ? हाय ! तुम मेरी स्वर्गीया पत्नी के मधुर चुम्बन की स्मृति की तरह प्यारे थे। तुम मेरे अनुत्पन्न पुत्र के छोटे से होठों की निर्दोष मुसकुराहट की स्वप्न-वासना की तरह मधुर थे। प्यार की प्रथम चोट की तरह गम्भीर और तूफान की तरह जगली थे !

शरच्चन्द्र

शरच्चन्द्र प्यारे! इस कुसमय में यहां क्यों आये हो? [illegible] धीरे से [illegible] जाओ, हृदय सो रहा है [illegible] फिर उसे सम्हालना [illegible] इतना हसते क्यों हो? और [illegible] हो [illegible] है? यही क्या निठुर! [illegible] है? [illegible] तब मैंने तुम से होड़ बदी थी, तुम्हें [illegible] हो। आज उसी का बदला लेने आये हो! छुः!

उस दिन गङ्गा के उपकूल पर, जब कलकल निनादिनी गङ्गा हर २ करती बही जा रही थी हम दोनों तुम्हें देख २ कर कुछ कह रहे थे। वे सब बातें तो अब याद नहीं हैं, पर वह समा तो सुर्मे की तरह आँखों में समा रहा है। हमने समझा था तुम हमें हँसता देख सुख से हँसते हो। पापात्मा ! तुम्हें आज समझा। अब तो वह दिन चला गया ? अब और किसे क्या दिखाने आये हो ? किसे लुभाने का इरादा है ? मूर्ख ! इसमें रस रस है पर नीरस में रस विष है।

भागो यहाँ से, तुम्हारी चाँदनी मुझे ऐसी प्रतीत होती है—जैसे मुर्दे पर सफेद कफन पड़ा हो, मैं डरता हूँ अब और नहीं देख सकता, हटो नेत्रों से दूर हो, नहीं मैं आँखें फोड़ लूँगा !

शरच्चन्द्र

शरच्चन्द्र प्यारे! आज कुसमय में यहां क्यों आये हो? जाओ, धीरे से यासक जाओ, हृदय सो रहा है आहट मत करो, जाग जायगा, फिर वसे सम्हालना और सुलाना कठिन हो जायगा। इतना हसते क्यों हो? निष्ठुर! यही क्या तुम्हारा सुधावर्षण है? यही क्या तुम्हारा सौन्दर्य है? जब दिन थे—तब मैंने तुम से होड बदी थी, तुम्हीं थक कर बैठ गये थे। आज उसी का बदला लेने आये हो? क्षुद्र! विपत्ति पर उपहास करते हो? छी.

उस दिन गङ्गा के उपकूल पर, जब कलकल निनादिनी गङ्गा हर २ करती बही जा रही थी हम दोनों तुम्हें देख २ कर कुछ कह रहे थे। वे सब बातें तो अब याद नहीं हैं, पर वह समा तो सुर्मे की तरह आँखो में समा रहा है। हमने समझा था तुम हमें हँसता देख सुख से हँसते हो। पापात्मा! तुम्हें आज समझा। अब तो वह दिन चला गया? अब और किसे क्या दिखाने आये हो? किसे लुभाने का इरादा है? मूर्ख! इसमें रस रस है पर नीरस में रस विष है।

भागो यहाँ से, तुम्हारी चादनी मुझे ऐसी प्रतीत होती है—जैसे मुर्दे पर सफेद कफ़न पड़ा हो, मैं डरता हूँ अब और नहीं देख सकता, हटो नेत्रों से दूर हो, नहीं मैं आँखे फोड़ लूँगा!

हिन्दी-पुस्तक-कार्यालय

कूचा पातीराम,

दिल्ली ।

की

सुन्दर, सरस, मनोहर पुस्तकों

का

सूचीपत्र

'विनोद-रत्न-माला'

के

स्थायी-ग्राहक बनने के नियम

१—स्थायी-ग्राहक बनने की फीस ॥) है।

२—पुस्तकें प्रकाशित होने के एक सप्ताह पूर्व सूचना-पत्र भेजा जाता है, और एक सप्ताह बाद २५ फीसदी कमीशन काटकर पुस्तक वी० पी० द्वारा भेज दी जाती है। जो ग्राहक पुस्तकें मँगाना न चाहें, उनका पत्र पाने पर, पुस्तकें नहीं भेजी जातीं।

३—हमारी-प्रकाशित और प्रचारित अन्य पुस्तकों पर भी स्थायी ग्राहकों को २५ फीसदी कमीशन मिलता है।

४—सूचना न देने पर भी वी० पी० लौटा देने-वाले सज्जनों की फीस ज़ब्त कर ली जाती है, और उनका नाम स्थायी-ग्राहक-सूची से काट दिया जाता है।

५—जो सज्जन ग्राहक-श्रेणी से नाम कटाना चाहें, उनकी प्रवेश-फीस स-धन्यवाद वापिस कर दी जाती है।

६—पुस्तकें मँगाने के अतिरिक्त स्थायी-ग्राहक कार्यालय दिल्ली से सम्बन्ध रखने-वाली कोई या कोई वस्तु लेना चाहेंगे, तो कार्यालय लिये तैयार गा।

३-दिल्ली का व्यभिचार

(ऋषभचरण-लिखित)

बड़े बड़े नगरों में दिन-दहाड़े भयानक दुराचार के खुले खेल खेले जाते हैं। बड़े बड़े दिग्गज, विद्वान् पुरुष भी अपने उच्च-पद का दुरुपयोग कर, भोली भाली जनता को अनाचार की तरफ ले जाते हैं, और बुरे-से-बुरे उपाय द्वारा भी रुपया लूटने में नहीं हिचकते। आधुनिक गर्हित पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के फल स्वरूप आज हमारे नवयुवक पतन के गढ़े में गिर गये हैं, और अपना भविष्य भूल, आँख मींचकर भयानक पाप करते नहीं हिचकिचाते। हमारी माँ-बहनें अशिक्षा और वासना में अन्धी होकर असहनीय, घृणित पापाचार में रत होने का दुस्साहस करतीं हैं। लेखक ने नगरों के कुछ ऐसे-ही दृश्य इस पुस्तक में रक्खे हैं। पुस्तक साहित्य की दृष्टि से कुछ ऊँची न होने पर भी साधारण पाठकों के लिये अत्यन्त शिक्षाप्रद, हितकर और उपादेय 'पीर साहब', 'फ़िल्म-एक्ट्रेस', 'स्काउट-मास्टर', 'हीजड़े

४-बिखरे-मोती

(ऋषभचरण-लिखित)

इस पुस्तक में लेखक की अठारह वर्ष की आयु-तक की लिखी गई सर्वोत्तम बारह कहानियों का संग्रह है। छोटे-से-छोटे कथानक और भाव में पाठक के अन्तस्तल में चुटकी लेना-ही कहानी की सफलता है। लेखक की इन सभी गल्पों में यह गुण पूर्ण-रूप से विराजमान है। कोई भी कहानी ऐसी नहीं है, जिसे समाप्त करने में दस मिनट से ज्यादा समय लगे प्रत्येक कहानी आदि से अन्त-तक ऐसी मनोरंजक और प्रवाह-पूर्ण है, कि बिना समाप्त किये नज़र उठाने की इच्छा नहीं होती। शब्द-जाल, सरलता, व्यङ्ग और विश्व अनुभव की स्पष्ट छाप आप इन कहानियों में पायेंगे। 'राख की पोटली', 'मुन्शीजी', 'ताँगेवाला' आदि कहानियों ने साहित्य-प्रेमियों से अच्छी दाद पाई है। कई कहानियाँ हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट, पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'ताँगेवाला', 'दानवीर भिखारी', 'सूखे आँसू'-इत्यादि कई कहानियाँ तो उर्दू आदि भारत की अन्य भाषाओं में अनुवादित होकर भी छप चुकी हैं—इसी से इनकी सफलता और उत्तमता का अनुमान किया जा सकता है। पुस्तक डेढ़ सौ से अधिक पृष्ठों पर सुन्दरता पूर्वक छापी गई है। ऊपर तिरङ्गा सुन्दर कवर है, और दाम केवल बारह आने सजिल्द १) रु०।

५-वेश्या-पुत्र

(ऋषभचरण-लिखित)

ऋषभचरण-लिखित एक मौलिक और प्रभावोत्पादक उपन्यास है। चरित्र चित्रण, भाव विश्लेषण और घटना-वैचित्र्य,—उपन्यास के तीनों प्रधान गुणों को सफलता पूर्वक निबाहा गया है। पात्रों की भाषा सामयिक, ज़ोरदार और उपयुक्त है। हिन्दू मुस्लिम दंगे में मारे गये एक युवक की पत्नी के पुरुषों की लम्पटता और चरित्र-हीनता से ऊबकर वेश्या हो जाने, और वेश्या होते हुये भी युवकों के चरित्र निर्माण में प्रयत्नशील रहने का आश्चर्य-जनक वृत्तान्त पढ़कर आप लेखक की आदर्श कल्पना की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। आदर्शवाद (Idealism) और यथार्थ वाद (Realism)—दोनों की रक्षा करते हुए जिस खूबी के साथ एक वेश्या के आन्तरिक भावों का दिग्दर्शन और उसका सुधार कराया गया है, वह सराहनीय है। इसी वेश्या के पुत्र के घटना चक्र मे पड़कर अपनी सहोदरा पर मोहित होने, और क्रमश अपनी पूर्व प्रेमिका से उदासीन होने में एक युवक हृदय भावों का जीवित दिग्दशन अत्यन्त मर्म स्पर्शी हो उठता है। आज-ही मँगाइये। साठ पाउण्ड ऍटीक़-पेपर पर स्वच्छ छपाई।

सुन्दर, भाव पूर्ण तिरङ्गा कवर, और दाम सिर्फ २॥) रु० सजिल्द ३॥) रुपया।

७-फाँसी

(जैनेन्द्रकुमार-लिखित)

—— ० ०:——

'फाँसी' में तीन राजनैतिक कहानियाँ सगृहीत हैं। १ फाँसी, २ ग़दर के बाद, ३, स्पर्धा। पहली कहानी 'फाँसी' में अंग्रेज़ी-सरकार का दिल हिला देने-वाले एक भयङ्कर हिन्दुस्तानी-डाकू का चरित्र है, जो अंग्रेज़ों की नज़रों में डाकू और हिन्दुस्तानियों की नजरों में दीन-दुखियों का सहायक, गुलामी का विरोधी, विदेशी सरकार का विद्रोही—कट्टर देशभक्त था। इस असाधारण पुरुष के धैर्य्यपूर्ण, उच्च व्यक्तित्व का हृदयस्पर्शी चित्रण, एक अंग्रेज-अफसर के वीर चरित्र का निष्पक्ष दिग्दर्शन, टुकड़-खोर भारतीय अफसर के पतित चरित्र का घृणित वर्णन और एक अबोध युवती के मुग्ध प्रेम की गाथा बड़ी-ही मर्मवेधिनी हो उठी है। दूसरी कहानी में लेखक की कल्पना का अद्भुत चमत्कार है। गदर के बाद—विजय और प्रतिहिंसा से अन्धे विदेशियों ने भारतीयों पर जो पाशविक अत्याचार किये, उनका रोंगटे खड़े कर देने वाला वर्णन है। तीसरी कहानी में एक साम्राज्य विरोधनी सस्था के दो युवक सदस्यों की अद्भुत, रहस्य पूर्ण स्नेह कथा है। यह पुस्तक प्रत्येक भारतीय के कलेजे में छुपकर रहने की चीज़ है। पढ़कर शरीर थर्रा उठेगा। दूसरा संस्करण। चार भयङ्कर चित्र। मोटा काग़ज़। मूल्य सिर्फ़ एक रुपया। सजिल्द सवा रुपया।

६-मास्टर साहब

(ऋषभचरण-लिखित)

अपने व्यक्तित्व पर कलङ्क लगता देख, युवक मास्टर साहब अत्यन्त शान्ति और निस्तब्धता के साथ, अनन्त वैभव को लात मारकर अपनी जीवन-नौका को भाग्य की पतवार के सहारे विस्तृत संसार-सागर में डाल देते हैं। वर्षों सुख और समृद्धि में जीवन बिताने पर भी वे जिस गम्भीरता के साथ अपने विपत्ति के दिन काटते हैं, उसे पढ़कर सहानुभूति से हृदय भर जाता है। कट्टर समाज-सुधारक सम्पतराय संयोग-वश मास्टर साहब से मिलते हैं, और उन्हें अपनी पत्नी का शिक्षक नियुक्त कर देते हैं। सम्पतराय की स्वजातीय साली बसन्ती के हृदय में मास्टर साहब के प्रति एकदम घोर सहानुभूति और स्नेह का प्रादुर्भाव होता है। परन्तु वह, गम्भीर मास्टर साहब के मनोभाव न समझकर, कठपुतली की तरह स्त्री-हृदय की रङ्गीन तरङ्गों में चक्कर लगाती है। एकाएक उपेक्षा की इतनी गहरी छाप उसके हृदय पर पड़ती है कि वह मास्टर साहब के अपमान का कारण बनजाती है। फिर मास्टर साहब की विशाल हृदयता उसकी समस्त दुर्भावनाओं को नष्ट कर उसे मास्टर साहब का कलङ्क धोने पर बाध्य करती है। अन्त में भ्रम और सन्देह का नाश होकर सब का सुखद मिलन होता है। 'मास्टर साहब' लेखक की अमर कृति है।

पाँच रङ्गीन चित्र! ढाई सौ पृष्ठ !! मूल्य २) रु०सजिल्द २।) रु०

महा-भयानक कष्ट दिया गया था, और अनगिनत भारतीय मजदूरों ने, अपमान और यातना से बिलबिलाकर काम छोड़ दिया था, और खुशी-खुशी जेल चले गये थे।

लगातार चौदह साल युद्ध चला। भारतीयों पर एक पशुता-पूर्ण 'काला क़ानून' लागू किया गया था। उसी के विरोध-स्वरूप यह संग्राम आरम्भ हुआ था। फिर कैसे, यह क़ानून रद्द हुआ, और कैसे संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष गाँधीजी का अहिंसात्मक सत्याग्रह युद्ध सफल हुआ ?— यह हमारे 'सत्याग्रह' में पढ़िये।

काग़ज, छपाई, सफ़ाई तो हमारे यहाँ की देशप्रसिद्ध हो चुकी है। दाम सिर्फ १) सजिल्द १।) रु०

८-हड़ताल

(ऋषभचरण-लिखित)

कुछ जोशीली और फड़कती हुई राजनैतिक कहानियों का संग्रह। सभी कहानियाँ नये तर्ज की, प्रभाव-पूर्ण और मन में अद्भुत लहर पैदा कर देने वाली हैं। पहली कहानी 'हड़ताल' में तो आप लेखक की कल्पना, सूझ और प्रतिभा को देखकर झूम उठेंगे। आजतक हिन्दी संसार में इस ढङ्ग की कहानियों का संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। छपाई, सफाई और गेट-अप के सम्बन्ध में तो कुछ कहना-ही बेकार है। मूल्य, वही एक रुपया सजिल्द सवा रुपया।

८–सत्याग्रह

(ऋषभचरण-लिखित)

आज क्या हो रहा है ? सारा भारतवर्ष एक महा भयंकर उत्तेजना, एक असाधारण आग एक जीवन और मृत्यु के घनघोर संग्राम में सना हुआ है '—आज देश का बच्चा-बच्चा 'मिटने या मिटाने' के भयानक संकल्प की पूर्ति में जुटा हुआ है !!—आज सदियों से पर्दे के वीभत्स पाप मे सनी हुई भारत की रही सही लाज हमारी हजारों माँ बहनें पर्दे और व्यर्थ की भीरुता को लात मारकर 'सत्याग्रह' संग्राम की धधकती हुई चिता मे कूद पड़ी है !!!

और—?—और क्या हो रहा है ?? आज महा-पुरुष गाँधीजी और हमारे साठ हजार भाई धन-जन, माँ बाप, और सांसारिक विषय-वासना को दूर फेंककर भारत की जेलों में साक्षात् नर्क यातना का अनुभव कर रहे है, और क्रूर, स्वेच्छाचारिणी गवर्नमेण्ट भयंकर दमन- अस्त्र को हाथ में लेकर नग्न नृत्य नाच रही है !—और अपनी प्रभुता को पशुता का अमली जामा पहना रही है !!

ठीक यही दक्षिण अफ्रीका में हुआ था !—यही अशान्ति, यही अहिंसा पूर्ण 'सत्याग्रह' युद्ध, और दमन और पशुता का नङ्गा नाच !—ठीक इसी प्रकार हजारों भारतीय जेलों में ठूँसे गये थे, सड़क पर चलते, ग्रामों में बैठे हुए भारतीय जान से मार डाले गये थे। स्त्रियों को जेल की कोठरियों में बंद कर

व्यभिचार

[आचार्य चतुरसेन शास्त्री—लिखित]

डरिये नहीं; नाम जैसा वीभत्स है, बात है नहीं। इसे पढ़कर आपके रोंगटे चाहे खड़े हो जायें, पर कुत्सित भावनाओं की गुञ्जायश नहीं है। बड़े बड़े भयानक रोगों का वर्णन, कारण और निदान, बड़े मनोयोग पूर्वक खूब जोरदार भाषा में लिखा गया है। भिन्न भिन्न रोगों के तीन-सौ के लगभग लाजवाब नुस्खे देकर तो मानों सोने में सुगन्ध पैदा कर दी गई है। साहित्य के कुछ आलोचकों ने यद्यपि इस पुस्तक की निन्दा की है; पर सच कहें तो उन्हें यह अधिकार ही नहीं था यह साहित्य की वस्तु न होकर एक चिकित्सा-ग्रन्थ है, और लेखक ने नवयुवकों की दिन दिन गिरती हुई दशा से बिल बिलाकर ही इसे लिखा है। पढ़ते पढ़ते कहीं समाज की बेगैरती और अन्धा धुन्धी देखकर जहर खालेने को जी चाहता है, कहीं अभागी युवतियों और दयनीय युवकों की दुर्दशा देख पर तरस आता है, और कहीं देश के भविष्य की कल्पना कर, रोम-रोम खड़ा हो जाता है। लेखक कलेजा कँपा देने-वाली भाषा के लिये सुप्रसिद्ध हैं। आपकी यह रचना एक भीतरी उफान का फल है, और एक-एक पृष्ठ से जैसे आग की चिनगारियाँ छूटती हैं। दाम सजिल्द का २।) रुपया

हमारी कुछ अन्य पुस्तकें

२१ बनाम ३०

[आचार्य चतुरसेन शास्त्री—लिखित]

आज भारत धधकती भट्टी में जल रहा है। यह सन् १९३० का साल है। सन् १९२१ में भी ऐसी ही भट्टी जली थी। इस २१ और ३० की भट्टी में क्या अन्तर है, और यह ३० की भट्टी कितनी अधिक भयानक है—इसका प्रत्यक्ष दर्शन करना हो, तो शास्त्रीजी की लौह-लेखनी की इस ताज़ी करामात में देखिये। भारत क्या था?—और क्या होगया?—दोनों हाथों से, मरवा पूर्वक अंग्रेजों ने किस प्रकार इसे लूटा? राष्ट्रीय कांग्रेस और राष्ट्र-पति जवाहरलाल का क्या महत्व है?—यह सब इसी पुस्तक मे है। इसके अतिरिक्त सारे संसार की अन्तर्राष्ट्रीय प्रगति का विद्वत्ता पूर्ण आलोचन और भविष्य भी आप इस ग्रन्थ में पढ़ेंगे। कुछ अध्यायों के शीर्षक सुनिये—'पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा', 'जवाहरलाल नेहरू', 'गान्धी का वज', 'देश का वातावरण', 'भावी महायुद्ध'! साढ़े तीन सौ पृष्ठ, और दाम केवल डेढ़ रु०

सजिल्द १॥) रु०

अन्तस्तल

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री का अप्रतिम गद्य-काव्य,

१० वर्ष बाद कुछ परिवर्तन होकर दुबारा छपा है।

प्रकाण्ड हिन्दी-साहित्य-महारथी—

प० पद्मसिंह जी शर्मा इसके विषय में लिखते हैं —

"कागज पै रख दिया है कलेजा निकाल के"

क्या आप जानते हैं निर्जीव लेखनी किस भाँति मूर्ति-मती होकर हँसती, रोती, हाहाकार करती, घृणा—वैराग्य और आशा तथा निराशा के झोंकों में झूमती है,—उसी भाँति जिस भाँति आप स्वयं होते हैं। एक-एक चीज पढ़िये, जगत् को भूलकर उसी में डूब जाइये।

श्री० पद्मसिंहजी और श्री टंडनजी के कथनानुसार यह ग्रन्थ लेखकों के मान करने की वस्तु है।

यह ग्रन्थ

गऊ-वाणी

[ऋषभचरण लिखित]

गो रक्षा की अनुपम पुस्तक है। हिन्दी-संसार में इस ढङ्ग की पुस्तक आज-तक नहीं निकली है। समस्त धर्म शास्त्रों के उद्धरण देकर यह सिद्ध कर दिया गया है, कि उनमें कहीं भी गो वध की आज्ञा नहीं दी गई है, और लोग उनकी अलङ्कारिक भाषा में उलझकर अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं। कुरान, बाइबिल, तौरैत जबूर-आदि धर्म-ग्रन्थों के विशिष्ट अंशों का चमत्कार-पूर्ण अर्थ किया गया है। गो-रक्षा के हामी हिन्दुओं को इसकी करोड़ों प्रतियाँ जातीय विजातीय भाइयों में वितरण करानी चाहिये। समस्त पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्त-कण्ठ से इसकी प्रशंसा की है। दाम ॥=)

हाहाकार

[आचार्य चतुरसेन शास्त्री-लिखित]

नाम जैसा रुलाने वाला है, चीज भी वैसी ही है। पुस्तक तो छोटी सी है, पर चीज एक से-एक ला जवाब है। शास्त्रीजी गद्य-काव्य, पद्य, और कहानी—सब कुछ—लिखते हैं। इस छोटी सी रचना में आप उनकी सब प्रकार की कृतियों का रसास्वादन कर सकेंगे। ६६ पृष्ठ, सुन्दर रङ्गीन टाइटिल, और दाम केवल।) चार आना। शास्त्रीजी की सर्व श्रेष्ठ रचना 'खूनी' इसी पुस्तक में मौजूद है। एक एक शब्द पढ़कर आप का दिल बाँसों उछलेगा आज ही एक प्रति मँगा लीजिये।

अन्तस्तल

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री का अप्रतिम गद्य-काव्य,

१० वर्ष बाद कुछ परिवर्तन होकर दुबारा छपा है।

प्रकाण्ड हिन्दी-साहित्य-महारथी—

प० पद्मसिंह जी शर्मा इसके विषय में लिखते हैं —

"कागज पै रख दिया है कलेजा निकालके"

क्या आप जानते है निर्जीव लेखनी किस भाँति मूर्ति-मती होकर हँसती, रोती, हाहाकार करती, घृणा—वैराग्य और आशा तथा निराशा के झोंको में झूमती है,—उसी भाँति जिस भाँति आप स्वय होते है। एक-एक चीज पढ़िये जगत् को भूलकर उसी में डूब जाइये।

श्री० पद्मसिंहजी और श्री टंडनजी के कथनानुसार यह ग्रन्थ लेखकों के मनन करने की वस्तु है।

यह ग्रन्थ

हिन्दू-यूनीवर्सिटी के बी० ए० के कोर्स में

तथा

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की सर्वोच्च-परीक्षा में

पाठ्य-ग्रन्थ रह चुका है

एक प्रति अपने लिये मँगा लीजिये। बहुत-कम छपा है।

दाम सजिल्द का डेढ़ रुपया

हमारा नया आयोजन !

आपने पाठकों से हम आशा करते है, कि वे हिन्दी-साहित्य के उद्भट लेखक आचार्य श्री चतुरसेनजी शास्त्री के नाम और उनकी यशस्वी क़लम से परिचित होंगे। हिन्दी-ससार में ऐसा कौन है जो उनकी क़लम का रसिया नहीं? अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण आप जब जिस विषय पर लिखते है, कलम तोड़ देते है। धर्म, साहित्य, राजनीति, समाज-शास्त्र और सरस-साहित्य इन विषयों पर आपने जब जो लिखा है, अप्रतिम है।

आप को यह जानकर आनन्द होगा, कि हमने भविष्य में आपकी समस्त रचनाओं को प्रकाशित करने का बँदोवस्त कर लिया है। यह बँदोवस्त हमें बहुत-ही व्यय-साध्य उपायों से करना पड़ा है—पर हम समझते है, इसके फल स्वरूप-जो चीजें, हम आप को देंगे, उससे हमारा सारा व्यय-भार और परिश्रम सफल होगा। शास्त्रीजी के ग्रन्थों को हम एक पृथक ग्रन्थ-माला में प्रकाशित करेंगे, और उस ग्रन्थ-माला का नाम होगा— 'भद्र-ग्रन्थावली'। जो सज्जन हमारी 'विनोद-रत्न-माला' के स्थायी ग्राहक होंगे, उन्हें सदैव पौनी कीमत में इस ग्रन्थावली की पुस्तकें मिलती रहेंगी। और यह कहना तो व्यर्थ-ही है, कि इस

ग्रन्थ-माला की सभी पुस्तकें असली सोने की मुहर होंगी, और उसके एक-एक अक्षर में पूरा रस होगा, जो आपको कुछ प्रदान करेगा।

ग्रन्थावली की प्रथम पुस्तक 'अन्तस्तल' तैयार है। मूल्य सजिल्द का १॥) डेढ़ रुपया।

ये पुस्तकें छप रहीं हैं—

१—ब्रह्मचर्य-साधन—किस भाँति सर्व-साधारण इस दुरूह व्रत का आसानी से पालन कर सकते है।

२—गार्हस्थ-जीवन—अमीर-गरीब किस भाँति सुखी और सन्तुष्ट जीवन व्यतीत कर सकते है।

३—आरोग्य गुटिका—नित्य के रोगों के उपचार और आरोग्य रहने की रीति।

४—बच्चों की शिक्षा—बिना ताडना-किये, बिना बल प्रयोग, बच्चों की मनोवृत्तियों का अध्ययन करके, कैसे बच्चों को शिक्षा दी जा-सकती है।

प्रत्येक का मूल्य १) एक रुपया।

विनीति—

सञ्चालक-हिन्दी-पुस्तक-कार्यालय,
दिल्ली।

हमारी पुस्तकें

यहाँ भी मिलती हैं



दिल्ली—इन्द्रप्रस्थ-पुस्तक-भण्डार, दरीबा कलाँ
मथुरा—फ्रेण्ड्ज़ एण्ड कम्पनी।
आगरा—पाराशर-पुस्तक भण्डार, दौलत मार्केट
कानपुर—प्रकाश पुस्तकालय चौक।
लखनऊ—सरस्वती-पुस्तक-भण्डार, अमीनुद्दौला पार्क
प्रयाग—साहित्य भवन लिमिटेड, जानसेनगंज।
काशी—भारत जीवन बुक-डिपो, ज्ञानवापी।
पटना—पुस्तक भवन, मुरादपुर।
कलकत्ता—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, २०३, हरीसन रोड।
बम्बई—हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग।
बरेली—राधेश्याम पुस्तकालय।
लाहौर—नारायनदत्त सहगल एण्ड सन्ज़, लुहारी गेट।
शिमला—पञ्जाब बुक डिपो, लोअर बाज़ार।
पूर्णिया—राघवप्रसाद गुप्त, बुकसेलर।

हमारे ट्रावलिंग सोल-एजेण्ट—

पण्डित रामविलास पाण्डेय,
२८२—गणेशगंज,
लखनऊ।